RNI No.- UPHIN/2017/74660
UGC Care List No. 222
पीयर रिव्यूड रेफर्ड जर्नल

ISSN: 2581-6985

प्रवासी जगत

प्रवासी जगत का साहित्य, साहित्यकार व संस्कृति केंद्रित पत्रिका

खंड-7, अंक-2 पौष-फाल्गुन 2080 / त्रैमासिक / जनवरी-मार्च वर्ष-2024

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण

(2 फरवरी, 1902 – 6 मार्च, 1995)

आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के दोण्डपाडु ग्राम में जन्मे, केंद्रीय हिंदी संस्थान के संस्थापक, हिंदी सेवी, पद्मभूषण श्री मोटूरि सत्यनारायण जी भारतीय संविधान सभा के सदस्य के रूप में हिंदी को राजभाषा के पद पर आसीन करवाने वालों में से थे। उनकी स्मृति में संस्थान द्वारा प्रति वर्ष भारतीय मूल के दो विद्वानों को विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु पुरस्कार प्रदान किया जाता है।

RNI No.- UPHIN/2017/74660
यू.जी.सी. केयर लिस्ट क्र. 222
पीयर रिव्यूड रेफर्ड जर्नल

ISSN : 2581-6985

प्रवासी जगत

प्रवासी जगत का साहित्य, साहित्यकार व संस्कृति केंद्रित पत्रिका

खंड-7, अंक-2 पौष-फाल्गुन 2080 / त्रैमासिक / जनवरी-मार्च वर्ष-2024

संरक्षक
प्रो. सुरेन्द्र दुबे
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

सह-संरक्षक
श्री नारायण कुमार
मानद निदेशक, अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद्

परामर्श मण्डलः

प्रो. विमलेश कांति वर्मा
भाषा वैज्ञानिक और प्रवासी साहित्य के मर्मज्ञ

डॉ. पद्मेश गुप्त
यू.के. हिंदी समिति, लंदन, यू.के.

डॉ. नूतन पाण्डेय
सहायक निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली

डॉ. संध्या सिंह
हिंदी प्रवक्ता-एन.यू.एस., सिंगापुर

सुभाषिनी लता सरीन
प्राध्यापिका, फ़ीजी नेशनल यूनिवर्सिटी, फ़ीजी

डॉ. अनीता शर्मा
लेखिका, शंघाई, चीन

अर्चना पैन्यूली
अध्यापिका एवं साहित्यकार, डेनमार्क

डॉ. रेखा राजवंशी
भारतीय साहित्य और कला संस्था, ऑस्ट्रेलिया

प्रधान संपादक
प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी
निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
ई-मेल : directorkhs1960@gmail.com

संपादक
प्रो. बीना शर्मा
विभागाध्यक्ष, अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
ई-मेल : dr.beenasharma@gmail.com

सह-संपादक
डॉ. मीनाक्षी दुबे
सहायक प्रोफेसर, पूर्वोत्तर सामग्री निर्माण विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

प्रकाशन प्रबंधक
डॉ. निरंजन सिंह
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)
हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005

खंड-7, अंक-2 पौष-फाल्गुन 2080 / त्रैमासिक / जनवरी-मार्च वर्ष-2024

स्वामित्व © : **सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा**

प्रकाशक : सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

संपादकीय कार्यालय : अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान,
हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005
ई-मेल: pravasijagat.khsagra17@gmail.com

सदस्यता शुल्क : व्यक्तिगत – प्रति अंक ₹ 40 / – , वार्षिक – ₹ 150 / –
संस्थागत – वार्षिक शुल्क ₹ 250 / –
(डाक व्यय प्रति अंक ₹ 35 / – तथा
वार्षिक ₹ 100 / – अतिरिक्त होगा)
विदेशों में प्रति अंक $ 10, वार्षिक $ 40

मुद्रक : **राष्ट्रभाषा ऑफसेट प्रेस, आगरा**

'प्रवासी जगत' में लेखों/रचनाओं में व्यक्त विचार/तथ्य लेखकों द्वारा प्रस्तुत हैं। पत्रिका में प्रकाशित लेख/सूचना-सामग्री से संपादक मंडल या संस्थान का सहमत होना आवश्यक एवं अनिवार्य नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक/प्रकाशक से अनुमति लेना आवश्यक है। समस्त न्यायिक विवाद आगरा न्यायालय के अंतर्गत विचारणीय होंगे।

संस्थान वेबसाइट : www.hindisansthan.in

अनुक्रम

क्र.सं.	आलेख का नाम	लेखक का नाम	पृ०सं०
•	आमुख	**प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी**	5-6
•	संपादकीय	**प्रो. बीना शर्मा**	7-8
1.	ज़ब्त शब्दों के हलफनामे में प्रवासी जीवन की गूंज	**प्रोमिला**	9-17
2.	प्रवासी पीढ़ी का जीवन संघर्ष और उषा प्रियंवदा	**पूनम सिंह**	18-29
3.	हिंदी साहित्य में नई दस्तक – अर्चना पैन्यूली	**सरोजिनी नौटियाल**	30-37
4.	तेजेन्द्र शर्मा के सृजन का अंतर्लोक और रचना-दृष्टि	**योगेन्द्र सिंह**	38-56
5.	21वीं सदी के प्रमुख हिंदी उपन्यासों में चित्रित मजदूर जीवन	**मनोज कुमार / सुभाष शर्मा**	57-67
6.	स्त्री विमर्श के विविध पहलू और तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ	**योग्यता भार्गव**	68-73
7.	भारतीय डायस्पोरा में 'कबीर पंथ'	**मुन्नालाल गुप्ता**	74-86
8.	श्री राम से सूरीनाम गिरमिटिया	**ऋतु शर्मा नंनन पांडे**	87-93
9.	वृद्धावस्था में जीवन और जीवन दृष्टि: प्रवास से अर्चना पैन्यूली के तीन उपन्यास	**विजया सती**	94-102
10.	हिंदी : अंतरराष्ट्रीय भाषा (वृहत्तर संदर्भ)	**तस्मीना हुसैन**	103-108

11.	बर्मा (म्यांमार) में बौद्ध धर्म : सांस्कृतिक प्रसार और वर्तमान में प्रासंगिकता	**श्वेता गुप्ता**	109–116
12.	प्रवासी साहित्यकार : संस्कृति व लोकजीवन से उत्साह का संवरण	**संदीप कुमार मिश्र**	117–122
13.	अभिमन्यु अनत के काव्य में युगीन परिदृश्य	**आशा मीणा**	123–128
14.	प्रजातांत्रिक राष्ट्रों की समाज चेतना और जागृति : उज़्बेकिस्तान और भारत	**मनीष कुमार मिश्रा**	129–135

- लेखकों के नाम और पते
- सदस्यता फार्म
- घोषणा प्रपत्र

❑❑

आमुख

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्‌वारा प्रकाशित विभिन्न पत्रिकाओं में अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग की पत्रिका 'प्रवासी जगत' का अपना एक अलग ही महत्व है जो वैश्विक परिदृश्य में भारतीयता और उससे संबंधित भाषा, साहित्य, संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

वर्तमान अंक में हिंदी प्रवासी जगत के प्रतिष्ठित एवं सुप्रसिद्‌ध साहित्यकार उषा प्रियंवदा, तेजेन्द्र शर्मा, अभिमन्यु अनत इत्यादि पर समीक्षात्मक लेख उपलब्ध कराए गए हैं। इसके अलावा प्रथम लेख 'जब्त शब्दों के हलफनामें में प्रवासी जीवन की गूंज' को विवेचित एवं विश्लेषित किया गया है। इसके अतिरिक्त उषा प्रियंवदा जी ने 'प्रवासी पीढ़ी का जीवन संघर्ष' किस प्रकार शब्दबद्‌ध किया है, उस पर प्रकाश डाला गया है। अर्चना पैन्यूली जो 'हिंदी साहित्य में नई दस्तक' दे रही हैं उस पर डॉ. सरोजिनी नोटियाल ने प्रकाश डाला है। पत्रिका के प्रस्तुत अंक में ऐसे भी विविध आलेखों का समावेश किया गया है, जो प्रवासी लेखन से संबंधित विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाल रहे हैं। उनमें 'भारतीय डायस्पोरा में 'कबीर पंथ', 'सूरीनाम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि', 'हिंदी : अंतरराष्ट्रीय भाषा (वृहत्तर संदर्भ)', 'बर्मा (म्यांमार) में बौद्‌ध धर्म : सांस्कृतिक प्रसार और वर्तमान में प्रासंगिकता', 'प्रवासी साहित्यकार : संस्कृति व लोक जीवन से उत्साह का संवरण', 'अभिमन्यु अनत के काव्य में युगीन परिदृश्य' तथा 'प्रजातांत्रिक राष्ट्रों की समाज चेतना और जागृति : उज्बेकिस्तान और भारत' के संबंध में आदि प्रमुख हैं।

इसमें जहाँ एक ओर प्रवासी साहित्य के संघर्ष की अनुगूँज है वहीं प्रवासी जगत का लोक जीवन, संस्कृति एवं युगीन परिदृश्य की झलक भी है। सदियों से संघर्षरत रहा प्रवासी जगत किन-किन उतार चढ़ावों से होकर गुजरा, इसका प्रतिबिंब जिस साहित्य में उभरा वह तो यहाँ है ही, और विशेष यह कि यहाँ प्रवासी जगत के भविष्य की परिकल्पना को उकेरता साहित्य भी है। इस अंक के आलेखों में प्रवासी साहित्यकारों की रचनादृष्टि की पहुँच; स्त्री जीवन / वृद्‌ध जीवन / मजदूर जीवन / इन सभी को बाँधता पंथ, धर्म और दर्शन भी है। इस अंक में हमें सूरीनाम, फ़ीजी, मॉरीशस, म्यांमार के अलावा उज्बेकिस्तान जैसे देशों के जीवन का लेखाजोखा, वहाँ के प्रवासी साहित्यकारों के कृतित्व से संबंधित आलेखों में देखने को मिलेगा। कुल मिलाकर विभिन्न देशों के जीवनानुभवों का इंद्रधनुष इस अंक में सम्मिलित साहित्यकारों के आलेखों में दृष्टिगोचर होता है जो पाठकों को निश्चित रूप से एक नया अनुभव देगा।

'प्रवासी जगत' का प्रवास निरंतर रूप से जारी है और भविष्य में भी यह प्रवास अबाधित रूप से जारी रहेगा। बहुत जल्द ही इस पत्रिका को हम एक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका का दर्जा दिलाने हेतु संकल्पबद्ध हैं। विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस का भी इसमें सहयोग लिया जाएगा।

संस्थान का निदेशक एवं पत्रिका का प्रधान संपादक होने के नाते प्रस्तुत अंक के समस्त रचनाकारों को हार्दिक बधाई, साथ ही इसके संपादक मंडल तथा परामर्श मंडल के समस्त सदस्यों को साधुवाद देता हूँ।

24/04/24

(प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी)
निदेशक

संपादकीय

प्रवास में रह रहे रचनाकारों की रचना धर्मिता को देखना जानना हो, उन रचनाकारों पर पाठकीय टिप्पणी आलोचना, विश्लेषण पढ़ना समझना हो तो 'प्रवासी जगत पत्रिका' के पृष्ठों को उलट-पलट लीजियेगा। रचनाकार का प्रवास चाहे देश के एक प्रांत से दूसरे प्रांत का हो, एक स्थान से दूसरे स्थान का हो अथवा एक देश से दूसरे देश का, व्यक्ति अकेला नहीं आता-जाता। उसके साथ बहुत कुछ ऐसा चला आता है जिसकी भनक उसे स्वयं भी नहीं पड़ती। जिन-जिन स्थानों पर जाता है, वहाँ जैसा देखता है, उसकी पूर्व स्थिति से सहज रूप से तुलना शुरू हो जाती है। पता नहीं क्यों, जाने अनजाने हम एक मानक सा स्थापित कर लेते हैं और फिर मानक पर, कसौटी पर आगत को कसने लगते हैं, अच्छे-बुरे का विशेषण चस्पा कर देते हैं, मसलन वहाँ सब कुछ अच्छा था, यहाँ सब कुछ बुरा है, अलग है। दरअसल अच्छा या बुरा शून्य में नहीं हुआ करता। अपने-अपने परिवेश, प्रकृति, पड़ोस, सभी साथी संगी को जैसे-जैसे करता देखता है वैसा ही स्वयं जाने अनजाने अपनाता जाता है। वही उसकी संस्कृति सभ्यता हो जाती है। वैसा ही पहनावा ओढ़ावा, भोजन, भाषाई व्यवहार उसकी आदतों में शामिल होता जाता है।

जनवरी-मार्च 2024 अंक चौदह आलेख के साथ प्रस्तुत है। हमेशा की तरह लेखों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। प्रवासी जीवन के प्रति पाठकीय/लेखकीय दृष्टिकोण, देश विशेष की चर्चा और प्रवासी रचनाकारों में लेखन की समीक्षा। इस अंक में पहली श्रेणी में प्रवासी जीवन की गूंज, मजदूर जीवन, भारतीय डायस्पोरा में कबीर पंथ, हिंदी अंतरराष्ट्रीय भाषा, संस्कृति व लोक जीवन को रखा जा सकता है। दूसरी श्रेणी में सूरीनाम, बर्मा और उज्बेकिस्तान देशों की समाज चेतना, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वर्मा में बौद्ध धर्म का प्रसार और तीसरी श्रेणी में बहुचर्चित रचनाकार विमर्श है जिसमें तेजेन्द्र शर्मा, उषा प्रियंवदा, अर्चना पेन्यूली, अभिमन्यु अनत की रचनाओं पर समीक्षात्मक लेख है।

सच तो यह कि जब प्रवासी साहित्यकार तत्कालीन स्थितियों परिस्थितियों घटनाओं पर कलम चला रहा होता है तो वह अपनी अनुभूति को अपनी मानसिक बुनावट को शब्दों में ढाल रहा होता है।

प्रवासी पीढ़ी के जीवन संघर्ष को उषा प्रियंवदा जिस तीव्रता से उकेरती हैं, उसकी गूंज डॉ. पूनम सिंह आलेख में सुनाई देती है। अर्चना पेन्यूली का लेखन निश्चित ही हिंदी साहित्य में नई दस्तक देता है, उनके तीन उपन्यासों पर गंभीर विमर्श इस बात को सिद्ध करता है। तेजेन्द्र शर्मा पर सृजन का अंर्तलोक और रचनादृष्टि स्त्री विमर्श के विविध पहलु जैसे आलेख प्रकाश डालते हैं।

कबीर केवल भारत में ही पढ़े, लिखे गुने नहीं जाते अपितु भारतीय डायस्पोरा में भी जनता के हृदय में उतने ही बैठे हुए हैं। वे व्यक्ति नहीं, एक पंथ हो चुके हैं, निरगुन के रूप में गाये दोहराये जाते हैं। साखी, सबद दोहे, रमैनी, उलटबांसियों में जीवन की ऐसी सीख दे जाते हैं कि मानुष भव बाधाओं से तर सकता है। इन रचनाओं को पढ़ते हुए एक बात और ध्यान खींचती है कि जीवन का चौथापन/वृद्धावस्था की स्थिति लगभग सभी जगह एक सी है। भारत में उन्हें संभालने को, उनके डगमगाते कदमों को सहारा देने को कम से कम परिवार व्यवस्था तो है पर कुछ देशों में तो वे अकेले हैं और वही अकेलापन उन्हें रास आ भी गया है। प्रवासी रचनाओं को पढ़ते कई-कई बार आँखे भीग जाती है कि भौतिकता के इतने उच्च स्तर होते भी दुख का संसार व्यापक हो सकता है।

अंक पाठकों के हाथ सौंपते प्रसन्नता है। प्रकाशन से जुड़ी हर छोटी बड़ी इकाई धन्यवाद की पात्र है जिनके सहयोग और तत्परता से अंक समय रहते पाठकों के हाथ सौंपा जा सका। रचनाकारों को खूब-खूब बधाई।

सर्वे भवन्तु सुखिनः

प्रो. बीना शर्मा
विभागाध्यक्ष
(अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग)

ज़ब्त शब्दों के हलफनामे में प्रवासी जीवन की गूंज

प्रोमिला

विश्व में प्रतिबंधित साहित्य का लंबा इतिहास रहा है। पंद्रहवीं शताब्दी में प्रिंटिंग प्रेस के शोधन से ज्यों-ज्यों जानकारी का जनतंत्रीकरण हुआ त्यों-त्यों एक समय तक दुर्लभ तथा कम संख्या में, पुस्तकालयों में सावधानी से सहेजी पुस्तकों का बड़े पैमाने पर उत्पादन, प्रसारण होने लगा। साथ-साथ सोहलवीं शताब्दी से ही चर्च और सरकारों ने सूचनाओं के प्रसारण को विनियमित तथा नियंत्रित करने के प्रयास भी प्रारंभ कर दिए। सन् 1546 में फ्रांसीसी राजशाही ने मुद्रक और लेखक एटिने डोलेट को उसकी नास्तिकता के कारण जलाकर मार डाला। 1559 में कैथोलिक चर्च द्वारा 'इंडेक्स ऑफ प्रोहिबिटेड बुक्स' नाम से प्रतिबंधित पुस्तकों की पूरी सूची जारी की गई। 'आ नो भद्राः क्रतवो यंतु विश्वतो' यानि 'कल्याणकारी ज्ञान को सभी दिशाओं से आने दो', को स्वीकारने वाले भारत में भी ऋषि याज्ञवल्क्य द्वारा गार्गी को मौन रहने जैसी चेतावनियाँ उभरी। और भले ही मध्यकाल तक किताब-पाबंदी जैसा कोई वृहत वृत्तांत प्रकाश में नहीं आया किंतु 1780 में 'बंगाल गजट' पर लगे सरकारी प्रतिबंध के पश्चात राजनैतिक, धार्मिक, लैंगिक और सामाजिक आधारों पर पुस्तकों को बड़े पैमाने पर प्रतिबंधित किया जाने लगा। 1897 में दीनबंधु मित्र के नील दर्पण को इंग्लैंड की पार्लियामेंट ने राजद्रोह की संज्ञा देकर उस पर पाबंदी लगा दी। 1910 में प्रेमचंद की पुस्तक 'सोजे वतन (राष्ट्र का विलाप)' पर जनता को भड़काने का आरोप लगाकर सभी प्रतियाँ जब्त कर नष्ट कर दी गयी। 1911 में तेलुगु कवयित्री मुद्दपालानी की रचना 'राधिका संतवणम' के पुनर्प्रकाशित संस्करण को अश्लील बताकर रोक दिया गया। जबकि 'साहित्य की नियति प्रतिबंध से मुक्ति के साथ बंधी है।... यह सब जानते हैं कि जब भी किसी साहित्यिक कृति पर प्रतिबंध लगाया जाता है तब जनतंत्र खतरे में होता है। साहित्य की संभावना समाज द्वारा दी गई वैधता, उसके बारे में संदेह या भय का शमन आदि मिलजुलकर उसे कोई भी सवाल पूछने, सभी कट्टरताओं पर संदेह करने, यहाँ तक कि नैतिकता और उत्तरदायित्व की राजनीति से संबद्ध मान्यताओं का भी विश्लेषण करने की छूट देते हैं।"[1] अतएव प्रवासी साहित्य के संदर्भ में यहाँ प्रश्न उभरता है कि सरकारी प्रतिबंधों और गिरमिटिया साहित्य का क्या संबंध रहा है? विशेषकर गुलाम भारत में जब्त

रचनाओं की कड़ी गिरमिटिया भारतवंशियों की जीवनगत विडंबनाओं की खंगाल से कैसे और कितनी जुड़ी है? देश की भीतरी समस्याओं वाले गुलाम कालखंड में इस हाशिए के प्रति साहित्यकार कितने सुधमना रहे हैं?

ब्रिटिश शासन द्वारा प्रतिबंधित 'राष्ट्रीय आल्हा' के 'भारत प्रवासी' शीर्षक में बाबूराम पेंगोरिया ने लिखा है–

अब कितने बाहर भारतवासी उनका भी कुछ करूँ बयान।
भूख की ज्वाला से जब मारे पहुँचे परदेशन में जाय॥
इनकी संख्या इस प्रकार है फ़ीजी पहुँचे साठ हजार।
पौने तीन लाख हैं मारीसिस में डीनाटॉड में एक लाख उनतीस हजार॥
नौ लाख भारतीय सिंघल द्वीप में पुगरंडा में दस हजार।
बिंडवार्ड में दो हजार हैं और शम में चार हजार॥
गिलबर्ट द्वीप में बसे तीन सौ सेंटलमेंटस असी हजार।
न्यूजीलैंड में बसे पाँच सौ दस हजार हैं जंजीबार॥
पच्चीस हज़ार केनिया बस रहे हांगकांग में चार हजार।
दक्षिण अफ्रीका में संख्या एक लाख इकसठ हज्जार॥
आस्ट्रेलिया में इनकी संख्या छह हज़ार छह सौ है जान।
बीस हजार जमैका मांहि बाह बात में जानो चार॥
हुंडराज में दो सौ पहुँचे मोमबासा में पाँच हजार।
सिचेलीज में पाँच बसे हैं बारबडीज एक हैं जाय॥
भारत प्रवासी से उधृत कर यह सब बौरा दिया बताय।[2]

कवि का उपर्युक्त लंबा आकलन देश से विदेशों में भेजे गए गिरमिटियों के लेखे–जोखे में इस समाज की जड़ों का संकेतक ही नहीं बनता, प्रवासी जीवन और ज़ब्त रचनाओं के सहसंबंध की खंगाल के वह नए गवाक्ष भी प्रत्यक्ष करता है, जहाँ से प्रवासी बंधुआ मजदूरों पर केंद्रित प्रेमचंद की कहानियों– 'यही मेरी मातृभूमि है' (1908) तथा शुद्रा (1926) से आगे लक्ष्मण सिंह के 'कुली प्रथा अर्थात् बीसवीं सदी की गुलामी' (1913 में लिखित, 1916 में 'प्रताप' में प्रकाशित व प्रेस एक्ट 1910 के अंतर्गत उसी वर्ष प्रतिबंधित) नाटक, ऋषभचरण जैन की 'और मेरे भी' (1931 में प्रतिबंधित 'हड़ताल' नामक संग्रह में संकलित) कहानी और तुलसीराम पांडे की 'दरबन का बलवा' (डरबन के यूनिवर्सल प्रेस से 1952 में प्रकाशित) कविता जैसी प्रतिबंधित रचनाओं में अनुबंधित मजदूरों की दास्तानें अंकित होती हैं। भारत में रची पहली दो रचनाओं 'कुली प्रथा', 'और मेरे भी' से लेकर विदेशी भूमि पर रहते हुए लिखी गयी 'दरबन का बलवा' में रचनाकार की सामाजिक संवेदनशीलता प्रवासियों की दहकती वास्तविकता का साक्षात्कार करती है। इतिहास की

द्वंद्वात्मक गति को पहचानने वाली शक्ति प्रत्यक्षता पानी है। लक्ष्मण सिंह तोताराम सनाढ्य की आत्मकथा 'फ़ीजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' से प्रेरित होते हैं। तुलसीराम पांडे सत्य घटनाओं का आँखों देखा हाल बयान करते हैं कि 'सुमिरन करके ओंकार की, और ब्रह्मा को शीश नवाय। लिखू हकीकत बलवा वाली, जो नेटाल को दिया कंपाय।"[3] और क्रमश: 1833 में यूरोप में दास प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् यूरोपीय साम्राज्य की कॉलोनियों में सस्ते श्रम की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित करने हेतु 'रोट एक्सपेरिमेंट' करार देते हुए खड़ा किया गया घोर अमानवीय, क्रूर और नयी पाश्विक गुलामी का जीवंत दस्तावेज रूपायित होता है। ब्रिटिश उपनिवेशों को संपन्न करने के लिये अंग्रेज शासित भारत में मजदूरों, कामगारों, श्रमिकों को दबाव, लालच या छल दिखाकर फ़ीजी, गुयाना, त्रिनिदाद, मॉरीशस, सूरीनाम आदि विदेशी द्वीपों में मरने के लिए छोड़ देने का कुचक्र प्रत्यक्षता पाता है, जिसे गांधी जी ने 'आधी गुलामी' करार दिया था क्योंकि 'यदि गुलाम काम नहीं करता तो उसे सजा दी जाती है। गिरमिटिया भी काम नहीं करता तो सजा पाता है। वह लापरवाही करता है, एक दिन काम पर नहीं जाता या ढिठाई करता है तो इसमें से किसी भी जुर्म में उसे कैद काटनी पड़ती है। जैसे गुलाम को एक मालिक दूसरे को बेच सकता है, वैसे ही गिरमिटिए को भी एक मालिक के पास से दूसरे के पास भेजा जा सकता है। जैसे गुलाम के बाल-बच्चों पर गुलामी का दाग लगता है, वैसे ही गिरमिटियों के बाल-बच्चों पर भी उनके लिए खासतौर से बनाए गए कानून लागू होते हैं। दोनों ही हालातों में केवल इतना ही अंतर है कि गुलामी की हालात जिंदगी भर रहती है, किंतु गिरमिटिए निश्चित अवधि के बाद छूट सकते हैं।"[4]

"अवसर मिले तो साम्राज्यवाद का चेहरा किस कदर खौफनाक हो सकता है, इस असलियत का एहसास 'कुली प्रथा' नाटक के पाठ से हो जाता है। फ़ीजी या किसी नए उपनिवेश में खेती-बाड़ी के लिए मजदूर ले जाना एक बात है सीधे-साधे लोगों को बहका कर बंधुवा मजदूर बनाना और गुलाम व्यापार करना इंसानियत को ताक पर रखना है।"[5] कहकर सत्येंद्र कुमार तनेजा कटु वास्तविकता को उद्घाटित करते हैं। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के छल-छंद कितने गहरे रहे हैं, इसे लक्ष्मण सिंह पक्षी जगत की कथा में व्यंग्यार्थ देते कहते हैं, 'सरोवर में पानी सूख गया है। मछली इत्यादि जलचर भूख प्यास से व्याकुल हैं। यह देख एक बूढ़े (अत्यंत चालाक) बगुले को स्वार्थी दया आयी उसने उन अकाल पीड़ित प्राणियों से कहा, 'भाई मुझे पास ही में एक जलाशय पता है जिसमें अनंत जल लहरा रहा है। वहाँ दुष्काल की तो वायु भी नहीं चल सकती है।' सब प्राणियों ने उसका मुँह लोभ और उत्सुकता से ताका परंतु वहाँ तक स्वत: चलकर जाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। बगुले ने कहा, मैं स्वयं बूढ़ा हूँ तो भी आपको दु:ख मुक्त करने के लिए मैं अपनी पीठ पर चढ़ाकर आप में से एक-एक को वहाँ ले जा सकता हूँ।' यह सुनकर सब बहुत प्रसन्न हुए। अब वह बगुला एक-एक को पीठ पर चढ़ा कर कहे हुए सरोवर की ओर ले आता है और दूसरे प्राणियों की

दृष्टि के ओट में होते ही अपने सवार को झट से चट कर जाता है।"[6] नाटक में कुटिल एवं छल प्रपंच से भरे सफेद बगुले के प्रतीक में गोरे अंग्रेजों के पाखंड, कपट, धूर्तता की अभिव्यक्ति मिली है। साथ ही राजाओं, राजबहादुरों के पास पुस्तक न पहुँचने की इच्छा भी नाट्य-समर्पण में यह कहते हुए की जाती है कि-

जो कि किराए के बोटों पर चढ़ काउंसिल को जाते हैं
बनकर मेंबर गर्वमेंट से ऑनरेबल कहलाते हैं
देशवासियों की आशा को कुचल चूर करने वाली
संस्था युक्त माननीयता धन-बल से जिनने पाली
उन सब राजा बहादुरों इत्यादि के श्री कर में
कभी ना पहुँचे यह पुस्तक हे ईशा माँगता हूँ वर मैं

नाटककार गरीब जनता के उत्पीड़न के लिए केवल अंग्रेजी शासन को उत्तरदायी नहीं ठहराता बल्कि निज शासक वर्ग की विभिन्न शोषक वृत्तियों को आवर्तमयी ढंग से प्रत्ययकारी रूप में प्रस्तुत करता है। देश के राजा, महाराजा अपने कर्त्तव्यों से च्युत, निज स्वार्थों में रत सामान्य जन की अवहेलना करते हैं और अंग्रेज शासक भी उत्पीड़न का कोई मौका हाथ से नहीं जाने देते। तीन अंकों चौबीस दृश्यों में नाटक 'हाय गुलाम व्यापार ये कुली प्रथा के वेश में/जो अब तक देखा नहीं था देखा भारत देश में।' का खुलासा करते हुए यह 'गुलामी' एक गुलगाँठ की तरह कैसे-कैसे, कितनी कसी गयी है, इसके प्रत्येक आयाम को सूक्ष्मता से रखता है। गरीब जनता को सारी सुख-सुविधाओं का सब्जबाग दिखाकर विदेशों में नौकरी देने के नाम पर फुसलाने, बहकाने के लिए औपनिवेशिक सरकार एजेंटों यानी आरकटियों का सहारा लेती है। बृजलाल नामक आरकटिये को डीपी अफसर का संदेश मिलता है कि 'दस कुलियों की आवश्यकता है, प्रति मनुष्य 210 रुपए इनाम मिलेंगे।' इस पर उसके साथी प्रसन्नतापूर्वक योजना बनाते हैं-

'दूसरा - दस? दस की तो कोई बड़ी नहीं है बात।
ब्रिज - भाई, पर सोच भी तो लो कोई घात।
तीसरा - अजी सेठ जी, चलते-चलते मार लेते हैं हाथ।
चौथा - आप चिंतित न हूजिए (गाता है) फाँस लिया करते हैं अवसर पे कपट जाल में हम। ठगी करने के लिए बन जाते कभी डॉक्टर हैं, ढूँढ रोगियों को भेजें फ़ीजी अस्पताल में हम, फाँस लिया करते हैं..।'[7]

सुकोमल सेन लिखते हैं, 'यूरोप के मालिक भारत के ग्रामीण इलाकों से मजदूरों को एकत्र करने के लिए भारत के अपराध जगत से जुड़े कुछ बिचौलियों का इस्तेमाल करते थे। इन आदमियों को प्रचलित शब्दों में अरकथी कहा जाता था। यह अरकथी बहुत ही लापरवाह

और बेरहमी से तमाम धूर्ततापूर्ण उपाय अपनाकर इन बेरोजगार, अधनंगे, भूखे ग्रामीण लोगों को लालच देकर भारत से बाहर जाने के लिए तैयार करते थे।' नाटक में भोले-भाले लोगों को ठगने के लिए धर्म-प्रलोभन भी सशक्त आधार था। सैंकड़ों रोगियों को दुख मुक्त करने वाले गौरांग देव की महिमा सुनाकर नाटक में उनके अंधविश्वास का लाभ उठाया जाता है। उन्हें 'चिरयोग समाधि' की सहज प्राप्ति का विश्वास दिलाया जाता है। अंग्रेज इंस्पेक्टर भी उन्हें भरोसा देता है, 'फ़ीजी बहिष्ट है। भगवान का, खुदा का, घर है। टूम वहाँ बड़ा अमीर हो जावेगा।" भोला और कुंती का पुत्र शंकर अमेरिका जाकर देश की आजादी के लिए ज्ञान लेना चाहता है पर आरकटियों द्वारा धोखे से फ़ीजी भेज दिया जाता है। उसकी स्थिति हूबहू तोताराम सनाढ्य से मिलती है जिन्होंने प्रताड़ना से लाचार होकर अंततः फ़ीजी जाने के लिए हामी भर दी थी। शंकर पत्र लिखकर बृजलाल को कोसता है और वहाँ के हालातों का सड़ा बयान प्रस्तुत करता है-

> रहता भूखा तीन दिवस में सात दिवस में,
> शक्ति जरा भी नहीं रही है मेरी नस में।
> तिस पर भी यदि कार्य नहीं मैं कर पाऊँगा,
> तो फिर घूंसे बेंत बूट ठोकर खाऊँगा।
> होता शतधा हृदय याद कर निर्दयता को
> मानवता में भरी देखता हूँ पशुता को।[10]

वह कहता है, 'जब देखता हूँ कि यह भारत का घर नहीं है कुलियों की झोपड़ी है। स्कूल की पुस्तकें नहीं हैं ये हंसिया और फावड़े हैं, और मैं। स्वयं स्वतंत्र नहीं बल्कि कुली शंकर हूँ, तब अत्यंत दुःख होता है। बिना किसी प्रकार की आर्थिक, शारीरिक सुरक्षा के मजदूर वहाँ पूर्णतः मालिकों की दया पर निर्भर रहते हैं। उन्हें कोई संरक्षण प्राप्त नहीं होता। गोरे अफसरों के अमानवीय व्यवहार और क्रूरता के समक्ष कोई अंकुश, कोई नियम काम नहीं करता। उन्हें कैदियों से भी अधिक श्रम करना और अत्याचार सहना पड़ता है, जिसकी पुष्टि एक फ़ीजियन के कथन से भी दृष्टव्य है, 'इतने में इंस्पेक्टर साहब आए। उन्होंने धमका कर दस कोड़े लगाए तो वह पाजी काम पर जाने की अपेक्षा वही लेट गया। इससे हुजूर, इंस्पेक्टर साहब अधिक क्रुद्ध हुए। और उन्होंने फेक कोट और बांह चड़ाकर/झुंझलाकर और आगे बढ़कर। घूंसा बाजी खूब मचाई, उसकी यों आपद घिर आई। कभी पीठ पर, कभी पेट पर, कभी आँख पर, कभी नाक पर। कभी गाल पर, कभी कान पर। दे दनादन खून बहा फिर, दाँत वाँत इस पाँच गए गिर। ये पंक्तियाँ भारतीयों के साथ हो रही नृशंसता को गहन रूप से उजागर करती हैं। मुझे विदित हो गया कि उनके मैले शरीरों की दुर्गंधि ने ही चमेली कुंज की सुगंधि मार दी होगी, जैसी घृणाप्रद पंक्तियाँ दमन, पीड़न और दासता के अन्य आयाम को गोचरता देती हैं।

किंतु नाटक यहीं तक सीमित नहीं रहता, कुंती की कथा में आगत की आहटों को गूंथकर विद्वेषी मानसिकता की टोह लेने का वैचारिक अभियान बन जाता है। बृजलाल को भारतीयों की त्रासद स्थिति विचलित नहीं करती। वह पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों की कम संख्या पर चिंतित होता है कि 'अरे भाई गाँट साहब की कोठी में सौ आदमियों के बीच कुल पच्चीस स्त्रियाँ रह गई हैं। यहाँ अभी आठ और चाहिए। आज्ञा है कि कम से कम तीन पुरुषों के लिए एक स्त्री अवश्य हो और इसी क्रम में पुत्र शंकर से मिलने की चाह में तड़पते भोला, कुंती की चुंगल में फाँस फ़ीजी पहुँचा दिया जाता है। वहाँ इंस्पेक्टर की कुदृष्टि कुंती पर पड़ती है और वह भोला की हत्या कर देता है। पति–मृत्यु से बेखबर कुंती प्रसूतिपीड़ा के कारण काम पर नहीं जा पाती तो साहब उसे लात घूंसों से मारकर जबरदस्ती ले जाता है, उसके साथ दुर्व्यवहार करने का प्रयास करता है। इंस्पेक्टर के कुकृत्यों पर अब्बास कहता है, 'इसने एक दिन दस बारह स्त्रियों की एक कतार में खड़ी करके उन्हें उनके बिलखते हुए बच्चों के ही सामने गेंडे की खाल के कोड़े से मारा था।... इसने क्या–क्या नहीं किया? एक दिन एक स्त्री अपने पाँच दिन के बच्चे को लेकर काम करने खेत पर आई थी। दोपहर को जब उसे प्यास लगी तो वह पानी पीने के लिए नदी पर गई। वहाँ छाया में बैठकर अपने बच्चों को दूध पिला रही थी। दुर्भाग्य से यह पापी वहाँ आ निकला। इसने उस दूध पीते बच्चों को खींच के नदी में फेंक दिया। मुँह में दूध उबलता हुआ बच्चा नदी में गिरकर बह गया।... इसने जबरदस्ती स्त्रियों को दूषित किया, इसलिए कई कुलियों ने अपनी स्त्रियों को मार डाला और आप फाँसी पर चढ़ गए। अंग्रेजी राज के अत्यधिक खूंखार और दमनकारी चरित्र का यह गहन उद्घाटन कार्यस्थलों पर महिलाओं के विरुद्ध अत्याचार–तंत्र का वह प्राचीन रूप है, जिसमें गिरमिट स्त्रियाँ अंग्रेजों की प्रताड़ना, वासना और उनके अश्लील व्यवहार का सहज शिकार बननी रही। ब्रिटिश अधिकारियों को यौन हिंसा, बलात्कार जैसे अमानवीय कृत्य करने में जरा भी संकोच नहीं हुआ। यानि औपनिवेशिकता का खेल केवल भारत–भूमि पर नहीं वरन् स्त्री–देह पर भी खेला गया।

गौरतलब है कि विस्तृत ब्रिटिश साम्राज्य की भाँति गिरमिटिया प्रथा भी व्यापक रही, लगभग विश्व व्यापी और गिरमिटिया मजदूरों को प्राप्त करने का मुख्य स्रोत भारत बना, जहाँ से साठ हजार से ऊपर गिरमिटिया मजदूर फ़ीजी तथा लगभग पंद्रह हजार (1860 से 1911 तक) गन्ने की खेती के लिए डरबन में भेजे गए। यही स्थिति अन्य देशों में भी रही। इन करारबद्ध श्रमिकों की जीवनगत विडंबनाओं का एक सिरा जहाँ 'कुली–प्रथा' में खुला है, वहीं समय के साथ धीरे–धीरे भारतीयों ने अपनी बुद्धिमत्ता, चतुराई और वर्षों की मेहनत से जो आर्थिक सुदृढ़ता प्राप्त की, उससे वहाँ के अन्य स्थानीय लोगों में उपजे द्वेष तथा उसके नकारात्मक परिणामों की बानगी 'दरबन का बलवा' में प्रकट हुई है। स्पष्टीकरण मिला कि

भारतीयों जिसमें तमिल, तेलुगु, हिंदी भाषी और मुस्लिम शामिल थे, से ब्रिटिश और अफ्रीकी लोगों की गहन ईर्ष्या कैसे छोटी-सी घटना को बलवे में बदल देती है। पं. तुलसीराम कहते हैं-

> तारीख तेरह महिना जनवरी संवत उन्नीस सौ उनंचास।
> बलवा शुरू हुआ डरबन में, कारण नीचे करूँ प्रकाश॥
> एक हिंदी भाई बैपारी, जिसका छोटा था दुकान।
> आया वहाँ युवक एक हब्शी, जिसे कहते छोटा अम्फान॥
> लेन-देन में हुआ बखेड़ा, हिंदी भाई गया रिसाय।
> एक तमाचा दिया युवक को, और शीशा पर दिया गिराय॥
> गिरते शीशा टुकड़ा हो गया, मस्तक चोट पहुँचा जाय।
> तुरंत बुलाए लिय एम्बुलैंस को, और अस्पताल दिया भिजवाय॥
> चोट लघु था सिर के उपर, मलहम पट्टी दिया बंधाय।
> पुलिस सिपाही पकड़ हिंदी को तुरंत कैद दिया पहुँचाय॥
> झूठ-मूठ की अफवाह फैली सब कुछ बात कही न जाए।
> यही बहाना करके हबशी इंडियन पर इल्जाम लगाय॥[16]

13 जनवरी, 1949 संवत् से यहाँ उनका तात्पर्य सन् से है। पूरे बलवे का प्रत्यक्षदर्शी रहा कवि इन तात्कालिक तथ्यों का ही वर्णन नहीं करता, उन गहन कारणों की पहचान भी करता है, जिनसे दंगों की आधारभूमि तैयार की गई थी-

> देखकर गोरे इनकी उन्नति, हृदय में उनके लगा अंगार।
> लगे भड़काने तब हबशिन को कि इंडियन होत जात हुशियार॥
> सुनकर बात कुछ गोरन की, गुंडे हब्शी करें विचार।
> मार भगाओ इन कूलन को, जो हमसे करते बैपार॥
> काला बाजार का करके बहाना हब्शिन करने लगे विचार।
> बहिष्कार कर दो इंडियन का, ताकि हम सब करें बैपार॥[17]

झूठ, फरेब के हथकंडों से अंग्रेज अफ्रीकियों और भारतीयों में फूट डाल उन्हें विभाजित करने की अपनी पुरानी नीति का पुनः सफल निर्वाह करते हैं। भारतीयों पर कालाबाजारी करने, अफ्रीकियों से चिढ़ने का आरोप लगाते हुए उन्हें अपने पाले में कर लेते हैं। सांप्रदायिकता को प्रोत्साहित करते हुए भारतीयों पर जमकर कहर बरपाया जाता है। लूटपाट, बलात्कार, हत्या के नृशंस नाच में 142 के मारे जाने, 1087 के घायल होने, 300 भवन नष्ट होने, 2000 ढाँचे ध्वस्त होने, 4000 के लगभग के शरणार्थी बनने, बहुतों के परिवार से बिछड़ने, आर्थिक नुकसान उठाने, अपमान, रंग, नस्लीय भेदभाव के कारण

आत्महत्या कर लेने की पुष्टि होती है। पुलिस तमाशबीन बनी खड़ी देखती रहती है- "हब्शी हब्शिन, गोरे- गोरी लूटकर माल सभी ले जाय। पुलिस सिपाही देख तमाशा, आपस में हँस के रह जाए।[18] एक बार फिर भारतीय स्त्रियों को भी इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। अपहरण करके उनकी अस्मिता रौंदी जाती है- 'अर्धनग्न कर रखें घरों में, छुरी से गाल दिए चिनगाय।। रुपवती खूबसूरत लड़किन को, पीस के कोयला बदन लगाए। आठ से दस हबशिन मिल साथे इज्जत आबरत दिए नशाय। सिर के बाल को तुंरत मूड़ के हबशिनी वस्त्र दिए पहनाय।[19] दिखावे मात्र के लिए ऐसा कमीशन बैठता है जहाँ कोई भी अमीर व्यक्ति सच्चा-झूठा बयान दे सकता है। किसी को सवाल-जवाब का अधिकार नहीं मिलता और अंततः सरकार जब कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर दोनों पक्षों को दोषी करार देती है तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक सत्ता मनुष्य के सरोकारों की व्यापकता और सार्वभौमिकता की संभावना मात्र के नकार देती है।

दोनों रचनाएँ साहस तथा सूक्ष्म अंवेषण वृत्ति के साथ प्रवासी जीवन के यथार्थ में पसरी कारुणिक विविधता को एक पृथक पटल देती हैं। 'घर में चोरों को लूट मचाते देखकर एक सेवक' के चित्कार से लेकर "मुख्य मुख्य घटना बलवा वाली, आल्हा छंद में दिया सुनाय।' के बीच दोनों साहित्यकार गिरमिटिया भारतीयों के उन कटु जीवन-सत्यों से टकराते हैं जो प्रवासी भारतीयों की वर्तमान परिस्थितियों की कड़ियाँ जोड़ते हैं। अतएव इस प्रवासी प्रतिबंधित साहित्य को न केवल तत्कालीन वरन् आज नव उपनिवेशीकरण के नए संदर्भों के पुनर्पाठ की आवश्यकता है।

संदर्भः

1. जॉक देरिदा का कथन, उद्धृत-मैनेजर पांडेय, सहमति असहमति, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 35
2. बाबूराम पेंगोरिया, राष्ट्रीय आल्हा, जैन प्रेस, आगरा, 1930, पृ. 19
3. विमलेश कांति वर्मा, हिंदी स्वदेश में और विदेश में, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2018, पृ. 452
4. रामविलास शर्मा, गांधी, आंबेडकर लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, 2008, पृ. 38
5. लक्ष्मण सिंह, कुली-प्रथा, सत्येन्द्र कुमार तनेजा, सितम की इंतिहा क्या है? सात जब्तशुदा हिंदी नाटक, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली, 2010, पृ. 158
6. वही, पृ. 151

7. वही, पृ. 158
8. सुकोमल सुकोमल, भारत का मजदूर वर्ग उद्‌भव और विकास (1830–2010), अनु. अवधेश कुमार सिंह, ग्रंथ शिल्पी, 2012 पृ. 61
9. सत्येन्द्र कुमार तनेजा, सितम का अंत क्या है? सात जब्त हिंदी नाटक, पूर्वोक्त, पृ. 167
10. वही, पृ. 185
11. वही, पृ. 186
12. वही, पृ. 190
13. वही, पृ. 188
14. वही, पृ. 184
15. वही, पृ. 215
16. विमलेश कांति वर्मा, हिंदी स्वदेश में और विदेश में, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 453
17. वही, पृ. 452
18. वही, पृ. 455
19. वही, पृ. 459

❑❑

प्रवासी पीढ़ी का जीवन संघर्ष और उषा प्रियंवदा

पूनम सिंह

किसी देश का नागरिक जब किसी अन्य देश में अल्पकाल या दीर्घकाल के लिए वास करे, तो उसे प्रवासी कहा जाएगा। भारत जैसे विकासशील देश के नागरिकों को यह लगता है कि वे विकसित देशों के प्रवासी बनकर अपनी भौतिक उन्नति कर सकते हैं और इसी चाह में आज की युवा पीढ़ी प्रवासी पीढ़ी में तब्दील होती जा रही है। प्रवासी पीढ़ी उस मेधावी युवा पीढ़ी को कहेंगे, जिसको अपने उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ भारत में नहीं, बल्कि विदेशों में दिखती हैं। यह पीढ़ी अपने करियर और सपनों की तलाश में अपने देश से दूर विदेशों में प्रवासी बन जाने में अपने जीवन की सफलता और सार्थकता तलाशती है। आज यह सिर्फ एक घर या परिवार की कहानी नहीं रह गई, बल्कि हर घर-परिवार की नियति बनती जा रही है। आज हमारे घरों में पल रही नन्हीं पीढ़ी भी प्रवासी पीढ़ी बनने के सपने देख रही है। विशेषकर भूमंडलीकरण के दौर में युवा पीढ़ी के लिए वैश्विक स्तर पर रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए हैं। किसी देश की भौगोलिक सरहद अब बाधा नहीं रही। विकसित देशों में अपने सुखद भविष्य की संभावना तलाशना पिछड़े और विकासशील देशों की युवा पीढ़ी के सपने बन गए हैं। आज 'ब्रेन-ड्रेन' की यह घटना एक वैश्विक शक्ल अख्तियार कर रही है। प्रवासी होने के अलग-अलग कारण हो सकते हैं, पर प्रवासकालीन जीवन स्थितियाँ सबकी एक-सी होती हैं। नए देश, नई संस्कृति, नए माहौल, नई जीवन-शैली, नई भाषा, नए तौर-तरीके को अपना पाना या उनके साथ तालमेल बैठा पाना आसान नहीं होता। प्रवासी जिंदगी जितनी लुभावनी, मनमोहक और आकर्षक दिखती है, वैसी होती नहीं है। ऐसे समय में उषा प्रियंवदा का स्मरण हो आना सहज ही स्वाभाविक है। उषा प्रियंवदा न सिर्फ प्रवासी लेखिका हैं, बल्कि प्रवासी पीढ़ी की सच्ची प्रतिनिधि भी हैं। उन्होंने प्रवासी पीढ़ी के सपने, महत्वाकांक्षाएँ और उनके जीवन संघर्ष को अनुभव की प्रामाणिकता के साथ व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है।

उषा प्रियंवदा ने अमेरिका को अपने प्रवासी जीवन की ही तरह अपने लेखन का भी केंद्र बनाया है। भूमंडलीकरण के दौर से अमेरिका विश्व की सबसे बड़ी शक्ति के रूप में

अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। दुनिया का सबसे अमीर, उदार और उन्नत देश अमेरिका दुनिया के समस्त विकासशील और पिछड़े देश के नागरिकों के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र रहा है। यही कारण है कि आज अमेरिका जाना किसी भी भारतीय के लिए सफलता का मानक बन गया है। इसी सोच के तहत भारत की युवा पीढ़ी अमेरिका की ओर उन्मुख हो रही है। चाहे उच्च शिक्षा हो, वैज्ञानिक अनुसंधान हो, तकनीकी शिक्षा हो या रोजगार – हर क्षेत्र में भारतीय युवा पीढ़ी अमेरिका जाने का मार्ग ढूँढ लेती है। पढ़-लिखकर अपने देश के लिए कुछ करने का जज्बा अब समाप्त हो गया है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'शून्य' के नायक और उपन्यास 'अंतर्वंशी' के राहुल जैसे मेधावी छात्रों के पिता चाहते थे कि उनकी संतान आई. ए. एस. बनकर देश सेवा करें, पर दोनों अमेरिका में अपने भविष्य की तलाश करते हैं। 'अंतर्वंशी' उपन्यास के राहुल का यह कथन अवलोकनीय है- "बाऊजी चाहते थे कि आई. ए. एस. में बैठूँ। जिस भारत की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपनी आहुति दी, उसके तंत्र का एक अंग बनूँ। बाद में उन्होंने चाहा कि मैं पढ़-लिखकर भारत लौट आऊँ, एक नॉर्मल सफल व्यक्ति की तरह रहूँ। पर मैंने वह भी नहीं किया। मेरी आँखें अपने स्वार्थ अपने ध्येय पर ही टंगी रही; मैंने उनका दिल तोड़ दिया।"[1] राहुल जैसे पात्रों के मन में न देश प्रेम की भावना है, न ही पिता के सपनों के प्रति संवेदना। अपनी निम्न मध्यवर्गीय जीवन स्थितियों से मुक्ति की तलाश में ऐसे पात्र अमेरिका जाते हैं।

प्रवासी होने के सबके अपने-अपने कारण और तरीके हैं। उषा प्रियंवदा के अनेक पात्र स्कॉलरशिप, रिसर्चफेलोशिप, असिस्टेंटशिप मिलने पर, तो कुछ जूनियर साइंटिस्ट, डॉक्टर, प्रोफेसर, इंजीनियर के रूप में, तो कुछ परिवार की आर्थिक सहायता के दम पर अमेरिका जाते हैं। कुछ ऐसे पात्र भी हैं जो दहेज में मिले धन के माध्यम से अमेरिका जाने के लिए टिकटों का प्रबंध करते हैं। इस संदर्भ में 'स्वीकृति' कहानी की जपा की यह उक्ति विचारणीय है- "सत्य से शादी भी कितनी हबड़-तबड़ में हुई थी। सत्य पोस्ट-डॉक्टोरल फैलो होकर विदेश आ रहा था। पत्नी पढ़ी-लिखी हो, और दो टिकटों का प्रबंध दहेज में मिले धन से हो सके, उसकी केवल यही दो मांगे थीं। विवाह के बाद दो दिन भी चैन से न बिता सकी थी, तीसरे दिन से ही पासपोर्ट और वीजा के चक्कर में लग जाना पड़ा। जपा ने बिना किसी खेद के स्वदेश छोड़ दिया, न जाने किन सुखों की आशा में।"[2] विवाह जैसा पावन अनुष्ठान भी प्रवासी पीढ़ी की महत्वाकांक्षा का जरिया बन सकता है, यह कथन इसी का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। उषा प्रियंवदा ने यह भी दिखलाया है कि स्त्री संदर्भ में विवाह भी प्रवासी होने का एक जरिया बनता है, साथ ही प्रवासी जीवन के प्रति स्त्री पात्रों में आकर्षण भी देखने को मिलता है। 'शेषयात्रा', 'अंतर्वंशी', 'नदी' जैसे उपन्यासों और 'टूटे हुए', 'स्वीकृति', 'प्रतिध्वनियाँ', 'शून्य', 'ट्रिप', 'चाँदनी में बर्फ पर' जैसी कहानियों में प्रवासी पुरुषों के साथ विवाह होने के कारण स्त्री पात्रों को प्रवासी होते हुए दिखाया गया है।

अमेरिका जाते समय प्रवासी पीढ़ी को रोमांच का अनुभव होता है, साथ ही वहाँ के जीवन के प्रति उत्सुकता और आकर्षण की भावना जन्म लेती है। नए परिवेश में खुद को एडजस्ट कर पाना आसान नहीं होता। प्रवासी जीवन व्यतीत करना हर भारतीय के लिए यातना भरा अनुभव है। इसे उषा प्रियंवदा 'कल्चरल शॉक' कहती हैं। हर पल स्वयं को नए वातावरण में मिसफिट महसूस करना और साथ ही नए वातावरण के अनुरूप खुद को ढालना बहुत कठिन होता है। इसी मन:स्थिति को व्यक्त करता 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास के पात्र मनीष का मंतव्य विचारणीय है- "... जब हम अपना देश छोड़कर बाहर जाते हैं, तो पहले छह महीने हम एक 'कल्चरल शॉक' के दौरान बिताते हैं, जबकि हर कदम पर हमें अपना देश, अपनी संस्कृति ऊँची दिखाई देती है।"[3] उषा प्रियंवदा के समस्त प्रवासी पात्र 'कल्चरल शॉक' के शिकार दिखाई पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति नए माहौल में खुद को अकेला, अवांछित और निरर्थक महसूस करता है। नए देश के प्रति उत्साह काफूर हो जाता है और जन्म लेती हैं मानसिक यंत्रणाएँ। अपने परिवार से दूर अमेरिका में अकेले रहते हुए 'एक और विदाई' कहानी की नमिता यह महसूस करती है- "मेरे अंदर कुछ परायापन सा है। यहाँ कभी भी धरती में जड़ें डालकर उग नहीं सकूँगी- ऐसा हर समय लगता रहता है। और ऐसी ही लंबी अर्धमृत, अर्धजीवंत दशा में दिन बीतते रहते हैं।" नमिता की तरह ही अन्य प्रवासी पात्र भी ऐसी ही मन:स्थिति के शिकार होते हैं। इस संदर्भ में ज्ञानेंद्र कुमार का विचार प्रासंगिक प्रतीत होता है- "विदेश जाकर बसने वाले लोग अपनी सभ्यता, संस्कृति, परंपराओं और नैतिक मूल्यों को भी साथ ले जाते हैं, साथ ही उन्हें दूसरे देश की संस्कृति से सामना भी होता है। प्रवासी लोग अपनी मूल संस्कृति से न टूटने और नवीन संस्कृति को पूर्ण रूप से न अपनाए जाने के कारण द्वंद्व का शिकार होते हैं।" सभी उन्नत देशों की तरह अमेरिका भी एक महंगा देश है। स्कॉलरशिप, असिस्टेंटशिप या फैलोशिप के दम पर वहाँ जीवन यापन कर पाना आसान नहीं है। निम्न एवं निम्न मध्यवर्गीय परिवार की प्रवासी पीढ़ी को वहाँ आर्थिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। भारत के विद्यार्थियों को यह लगता है कि अमेरिकन विद्यार्थियों की जिंदगी बड़ी मौज-मस्ती और आनंद वाली होगी, पर यथास्थिति इससे बिलकुल भिन्न है। नीना भी इसी सोच से ग्रस्त है। अमेरिका में विद्यार्थी जीवन बिता चुकी राधिका उसकी सोच का निराकरण करती हुई कहती है- "... वहाँ का विद्यार्थी जीवन भी आसान नहीं नीना जी, जहाँ कम ही मम्मी-डैडी कॉलेज की पढ़ाई का खर्च देते हैं। मैंने ही पूरे ढाई साल सुबह नौकरी की और शाम को पढ़ा। खाली समय लाइब्रेरी में बिताया, वहाँ मुफ्त फिल्म या टेलीविजन देखने का समय तो मुझे नहीं था।"[6] राधिका के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय माता-पिता की तरह अमेरिकन माता-पिता आजीवन अपने बच्चों की जिम्मेदारी का वहन नहीं करते। हर अमेरिकन विद्यार्थी को अपनी पढ़ाई का खर्च खुद निकालना पड़ता है। इसीलिए वहाँ के विद्यार्थी पढ़ाई के साथ-साथ 'पार्ट टाइम' काम भी करते हैं। प्रवासी विद्यार्थियों को भी

वहाँ पार्ट टाइम काम करके ही अपना खर्च निकालना पड़ता है। इसी यथास्थिति को व्यक्त करता 'शेषयात्रा' उपन्यास की अनुका का यह मंतव्य अवलोकनीय है– "प्रणव की बीवी और बड़ी लल्ली की बहू रेस्तरां में खाना पका रही है, पर तभी उसे याद आता है कि वह अकेली नहीं है, जस्टिस चौधरी की बेटी भी उसी जगह वेट्रेस है। उनका दामाद यहीं बावर्ची है।[7] भारत में जिनकी सामाजिक हैसियत अच्छी है, धनाढ्य, और नामी–गिरामी परिवारों के बच्चे भी अमेरिका में अध्ययन करने के दौरान बावर्ची और वेट्रेस का काम करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। भारत में ऐसा काम करना सामाजिक निंदा का विषय हो सकता है, पर घर से दूर अमेरिका में ऐसा काम करते हुए उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा आड़े नहीं आती। उषा प्रियंवदा की 'ट्रिप' कहानी की सोनी और 'शून्य' कहानी की लता बेबी सिटिंग, 'अंतर्वंशी' की वाना डे केयर और अंजी दर्जी, 'मछलियाँ' कहानी की विजयलक्ष्मी लैब में, 'संबंध' कहानी की श्यामला फ्रीलांस में – सभी स्त्री पात्र भी कोई न कोई पार्ट टाइम काम करते नजर आते हैं।

प्रवासी पीढ़ी की विडंबना यह है कि उसके जीवन संघर्ष से उसका घर–परिवार अनभिज्ञ होता है। प्रवासी पीढ़ी से उसके परिवार की कई उम्मीदें जुड़ी होती हैं और यह मान लिया जाता है कि अमेरिका या विकसित देशों में बच्चे बड़ी आरामदायक जिंदगी जी रहे हैं। ऐसे समय पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ उनके कंधे पर हमेशा महसूस होता है। 'टूटे हुए' कहानी का भास्कर अमेरिका में रहते हुए भी चुभन का अनुभव करते हुए कहता है– "मेरे मन में कुछ चुभने–सा लगा था। मेरी मजबूरियाँ यहाँ भी पीछा कर रही थीं। छात्रवृत्ति का आधा भाग घर भेज देता था, वहाँ माँ थी, गाँव में घर, विवाह–योग्य बहन, कॉलेज में पढ़ता भाई।" पात्र भले ही अपने परिवार से दूर हो पर अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ से विमुख नहीं हो पाते। 'शून्य' कहानी के नायक को भी बहन के विवाह के खर्च की व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में वह बैंक से लोन लेता है। अपने माता–पिता को अपनी आर्थिक स्थिति नहीं बात पता। अपने पिता की मृत्यु के समय भावुकतावश अपनी माँ से यह कह बैठता है– "वहाँ की जिंदगी, खास तौर से हम विद्यार्थियों की बेहद मुश्किल है। वहाँ कैनेडियन, अमरीकन, अंग्रेजों से कंपिटीशन करना पड़ता है। पढ़ाई भी तो कैसी पढ़ाई! रात–रात भर कंप्यूटर रूम में बैठे रहो जाड़े में, गर्मी में मैंने एक प्रोफेसर के साथ काम किया, वह दूसरी यूनिवर्सिटी चला गया। दूसरे प्रोफेसर के साथ पटरी नहीं बैठी। साल भर बर्बाद करके फिर पहले प्रोफेसर के पास पहुँचा, तो वहाँ असिस्टेंटशिप नहीं मिली। नौकरी भी की और पढ़ाई भी। एक वृद्धा के घर रहा। गर्मी में उसकी घास काटी जाड़ों में बर्फ साफ की, कमरे के किराए के बदले अब जाकर थीसिस पूरी होने को आई है। पता नहीं नौकरी मिलेगी भी या नहीं..."[9] ऐसे संदर्भ प्रवासी विद्यार्थी जीवन के संघर्ष, पीड़ा, यंत्रणा का जीवंत दस्तावेज बन जाते हैं। ऐसे संदर्भ इस ओर इशारा करते हैं कि अपने देश से दूर रह रही हमारी युवा पीढ़ी

अकेले नए परिवेश में आर्थिक ही नहीं, मानसिक पीड़ा की भी शिकार बनती है। उनके ऊपर हमेशा सफल होने का दबाव रहता है, पर सफल होना उतना आसान नहीं है क्योंकि उन्हें वैश्विक स्तर के विद्यार्थियों के साथ प्रतियोगिता करनी पड़ती है। साथ ही साथ अपने परिवार वालों की आशाएँ और उम्मीदें भी बोझ बन जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में वे अपनी असफलता को अपने माता-पिता से बाँट नहीं पाते, बल्कि उसकी शर्मिंदगी और दबाव तले अपनी जिंदगी को विकृत कर लेते हैं। 'भया कबीर उदास' उपन्यास की लिली भी ऐसी स्थिति में घर लौटना नहीं चाहती "वह बार-बार अपने से पूछती क्या सफल होना ही जीवन का उद्देश्य है? इस अस्तित्ववादी दुविधा में फँसे-फँसे भी वह एक गहरे स्तर पर जानती है कि वह बिना पी-एच.डी. समाप्त किए भारत नहीं लौट सकती थी। जिस ठसक से वह भारतीय रिसर्च को तिलांजलि देकर विदेश चली आई थी, किस मुँह से वापस जाएगी..."[10] ऐसी स्थिति में वह केवल आर्थिक ही नहीं, मानसिक पीड़ा की शिकार भी होती है।

प्रवासी पीढ़ी के लिए काम करना जरूरत नहीं मजबूरी बन जाता है। 'शेषयात्रा' उपन्यास की सद्यप्रसूता नीरजा का कथन द्रष्टव्य है- "यह हुआ शनिवार को। मैंने शुक्रवार तक अपनी 'लैब' में काम किया। सिर्फ दो हफ्ते की छुट्टी ली और फिर काम पर वापस।" नीरजा को मातृत्व के लिए भी कोई छुट्टी नहीं मिलती। वह गर्भावस्था में भी गर्भ के आखिरी दिन तक काम करती है। संतान को जन्म देने के दो सप्ताह के बाद ही उसे अपने काम पर वापस जाना पड़ता है, क्योंकि वहाँ प्रवासियों के लिए कोई सवैतनिक मैटरनिटी का प्रावधान नहीं है। नीरजा का पति आलोक अभी पी-एच.डी. कर रहा था, इसीलिए घर की सारी आर्थिक जिम्मेदारी नीरजा पर ही थी। नीरजा के पास नौकरी छोड़ने का विकल्प भी नहीं था। इतना ही नहीं वहाँ प्रवासियों को रंगभेद का शिकार भी होना पड़ता है। 'भया कबीर उदास' की लिली यह मानती है- "स्कॉलरशिप, असिस्टेंटशिप, नौकरी, सभी में उसे उच्छिष्ट ही मिला, पहले सफेद पुरुष, फिर सफेद स्त्रियाँ, फिर अश्वेत पुरुष, टर्की, पाकिस्तान, नेपाल, आंध्रप्रदेश के बाद उसका नंबर। इस समुदाय में केवल एक भारतीय लड़की।"[12] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि अमेरिका में श्वेत-अश्वेत नागरिकों में ही नहीं, बल्कि विदेशी नागरिकों में भी भेदभाव बरता जाता है। इस भेदभाव की वृत्ति के कारण योग्य भारतीय विद्यार्थियों को सम्मानजनक नौकरियाँ नहीं मिल पाती। विडंबना तो यह है कि सिर्फ अन्य देशों के नागरिकों की तुलना में भारतीय नागरिक उपेक्षित नहीं रहते, बल्कि उत्तर भारतीयों की तुलना में दक्षिण भारतीय नागरिकों को अधिक महत्व दिया जाता है। उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय विद्यार्थियों में भी वैमनस्यता की भावना देखने को मिलती है। 'एक और विदाई' कहानी की कृष्णा द्वारा नमिता को 'स्लाइमी नॉर्थ इंडियन' कहना इसी बात का प्रमाण है।

उषा प्रियंवदा ने ऐसे मुद्दों को भी चिंतन का विषय बनाया है। उषा प्रियंवदा ने न केवल भारतीय बल्कि बांग्लादेश, इजरायल, ऑस्ट्रेलिया, पाकिस्तान जैसे कई देश की प्रवासी पीढ़ी की जीवन स्थितियों और जीवन संघर्षों का सजीव चित्र उपस्थित किया है। 'एक और विदाई' कहानी की फ्रिदेरीके भी अपने देश ऑस्ट्रेलिया को याद करती है। उसे अमेरिका की संस्कृति पसंद नहीं है। वह अपने घर लौटना चाहती है, इसीलिए गर्मी की छुट्टियों में जब भोजनागार बंद रहता है, तब वह उपवास करती है, ताकि घर लौटने का किराया जमा कर पाए।[14] इसी तरह 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में राधिका की रूममेट यहूदी दोस्त भी मितव्ययी है, वह राधिका को प्रतिकूल परिस्थितियों में एडजस्ट करना सिखाती है– "राधिका जूडिथ नाम की एक यहूदी लड़की के साथ एक फ्लैट में रहती थी। जूडिथ से जो मितव्ययिता सीखी थी, वह अब काम आ रही थी। वह पूंजी, जो अपने आप संचित हो गई थी, उस पर राधिका एक वर्ष बिना कुछ किये काट सकती थी, यदि वह उसी सावधानी से काम ले। इसीलिए उसने अपने लिए एक भी नया वस्त्र नहीं खरीदा था...."[16] स्पष्ट होता है कि भारतीय ही नहीं बल्कि अन्य देशों की प्रवासी पीढ़ी भी एक ही हालात की शिकार होती है। बांग्लादेशी अंजी अपने पति के साथ बेहतर जीवन की उम्मीद में शिकागो आती है, पर उसका जीवन अंतहीन यातना में तब्दील हो जाता है– "यह ख्याल बार–बार आता है कि हम मियां–बीवी में कितना प्यार और मोहब्बत थी। ढाका से इस्लामाबाद, वहाँ से शिकागो। दुख–सुख के साथी, असलम को यहाँ आकर अमरीकी इम्तहान पास करने में कितनी दिक्कतें हुई, टाइम ही नहीं मिलता था प्रिपेयर करने को। दिन में वीडियो स्टोर देखते थे, रात में टैक्सी चलाते थे।"[17] अंजी को यह महसूस होता है कि हम मियां–बीवी अपने देश बांग्लादेश में ही बहुत खुश थे। ऐसे कथन प्रवासी पीढ़ी के मोह भंग का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। उषा प्रियंवदा स्वयं एक प्रवासी पीढ़ी की प्रतिनिधि रचनाकार हैं। वे स्वयं इस अनुभव की साक्षी रही हैं। उनकी आत्मस्वीकृति द्रष्टव्य है– "मैंने बहुत बाद में गहराई से महसूस किया कि भारत से दूर रह जाने का निर्णय गलत था; मैं उस निर्णय और उससे जन्मी परिस्थितियों को कभी पूर्ण रूप से आत्मसात ना कर सकी..."[18] इस कथन से हम सहज ही यह अनुमान लगा सकते हैं कि प्रवासी जीवन हमेशा सफल और सार्थक हो यह जरूरी नहीं है, कभी–कभी यह निरर्थक और बेमायने भी महसूस होता है।

नए देश में नई संस्कृति के तौर–तरीके और रंग–ढंग में खुद को ढालने में समय लगता है, पर एक बार उस रंग में रंग जाने पर प्रवासी पीढ़ी अपनी संस्कृति को धीरे–धीरे भूलने लगती है। 'वनवास' कहानी के श्रीवास्तव का कथन विवेचनीय है– "शर्म कैसी भाभी, सभी यही करते हैं। पहले साल तो कमरे में घुसा बैठा रहा, हिम्मत नहीं पड़ी, पर अब तो यह हाल है कि शुक्रवार की रात को अगर 'डेट' ना हो, तो आत्महत्या करने का विचार होने लगता है।"[19] ऐसा मंतव्य भले ही हमें चकित करे, पर साथ ही प्रवासी पीढ़ी की जीवन

स्थितियों का जीवंत दस्तावेज भी प्रस्तुत करता है। प्रवासी पीढ़ी पाश्चात्य रंग में इस कदर रंग जाती है कि धीरे–धीरे न केवल अपनी संस्कृति से, बल्कि अपने घर–परिवार से भी दूर हो जाती है। 'चाँदनी में बर्फ पर' कहानी का हेम भी अपने माता–पिता की इच्छा के विरुद्ध अमेरिकन स्त्री से विवाह कर अमेरिका में ही बस जाने का निर्णय लेता है। पर अपनी पत्नी के अमेरिकी आचरण के कारण नितांत अकेला, असहाय और निरर्थक महसूस करता है– "वह जानता था कि अन्य भारतीयों पर उसका इस बात का रोब है कि उसकी मीरा–सी पत्नी है, ठीक लेक के किनारे महंगा अपार्टमेंट हैं, नौकरी, प्रतिष्ठा, पर हेम के लिए यह जीवन कितना अलोना हो आया है। इसे शायद मीरा भी नहीं जानती। और प्राय: वे चेहरे आँखों के आगे उभरने लगे थे, जिनके बीच पलकर वह बड़ा हुआ था।"[19] सामाजिक प्रतिष्ठा के सारे उपकरणों से लैस होते हुए भी वह खुद को असफल महसूस करता है और ऐसी स्थिति में उसे, अपने घर की याद आती है। वे सारे चेहरे उसकी आँखों के सामने उभरने लगते हैं, जिन्हें छोड़कर, नकारकर विदेश में रहने का निर्णय लेता है। 'सागर पार का संगीत' कहानी की देवयानी भी अपने भारतीय मंगेतर से संबंध–विच्छेद करके अमेरिकी प्रेमी से विवाह कर लेती है। अमेरिकी पति के प्यार के बीच भी वह खुद को एकाकी, खाली और अर्थहीन महसूस करती है। वह अकेले होने पर अचानक रोने लगती है, दीवार पर सिर पटकने लगती है, घर की चीज तोड़ने–फोड़ने लगती है। उसे यह महसूस होता है– "मैं औस्कर को बहुत–बहुत प्यार करती हूँ, मैं बेहद भरी भी हूँ फुलफिल और बेहद अकेली भी। कभी–कभी तो मैं इतनी अकेली हो जाती हूँ कि औस्कर, उसके मित्र, सभी बड़ी दूर लगने लगते हैं, जैसे मेरे चारों ओर एक शीशे की दीवार आ खड़ी हुई हो।"[20] एक साथ आकर्षण और विकर्षण, लगाव और दुराव, मोह और मोहभंग की स्थिति प्रवासी संस्कृति में खुद को मिसफिट महसूस करने की अनुभूति से जन्मी है। वह भले ही अमेरिकन लड़के से प्रेम करती है, पर उसकी संस्कृति के साथ तालमेल बैठाने में असफल हो, इतनी अधिक मानसिक तनाव का शिकार होती है कि मनोरोगी हो जाती है। यही देवयानी जब श्री करतार सिंह द्वारा गुरुद्वारे में आमंत्रित की जाती है, तो खुद को जीवन से परिपूर्ण और आनंदित महसूस करती है। उसकी मन:स्थिति को व्यक्त करती ये पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं– "...देवयानी रेलिंग से टिककर खड़ी हो जाती है और बहुत दिनों पहले के गीत की एक कड़ी होठों पर आ जाती है। देवयानी प्रसन्न है और अब औस्कर का ध्यान नहीं आता। गुरुद्वारे के बाहर जूतों और चप्पलों का ढेर है। अंदर से तबले, हारमोनियम की बड़ी परिचित आवाज आ रही है। देवयानी का तन–बदन सिहर उठता है।"[21] इन पंक्तियों के आलोक में हम यह कह सकते हैं कि हमारी परवरिश और हमारा संस्कार जिस सांस्कृतिक माहौल में हुआ है, उसी माहौल में हम स्वस्थ अस्तित्व के साथ फल–फूल सकते हैं, पर जब भी हम अपनी संस्कृति से कटते या काटे जाते हैं, तब हम आहत, घायल और बेचैन रहते हैं। देवयानी ही नहीं देवयानी जैसे समस्त पात्र जो अपनी संस्कृति से दूर होने का निर्णय ले तो लेते हैं, वे अंतत: अपने अंतर्मन

से अपनी संस्कृति को निकाल नहीं पाते। ऐसी स्थिति संत्रास को जन्म देती है। इसी संदर्भ में मनोज श्रीवास्तव की यह पंक्तियाँ सटीक प्रतीत होती हैं "...प्रवासी साहित्य ने हिंदी में मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक द्वंद्व का जो अनुभव दिया है, एक ही समय घर से दूर होने का दर्द और घर से दूर होने की जरूरत का वह हमारी भाषा की एक बड़ी रचनात्मक पूंजी है।"[22]

'अंतर्वंशी' उपन्यास में छात्रवृत्ति समाप्त होने के बावजूद अवैधानिक रूप से अमेरिका में रह रहा सुबोध राय एक ऐसी अतिमहत्वाकांक्षी प्रवासी पीढ़ी का प्रतीक बन जाता है, जिसके लिए व्यक्तिगत उन्नति, स्वार्थ सिद्धि और महत्वाकांक्षा इतनी महत्वपूर्ण है, जिसके लिए वह किसी भी रिश्ते के साथ विश्वासघात कर सकता है। अपनी पत्नी और परिवार को भारत में छोड़ कर वह अमेरिकन स्त्री से चुपचाप विवाह कर लेता है ताकि उसे अमेरिका की नागरिकता मिल पाए। ऐसे व्यक्ति किसी भी देश के लिए शर्म और अपमान का विषय होते हैं। उषा प्रियंवदा ने ऐसे अवसरवादी, मक्कार प्रवासियों को भी अपनी रचना का विषय बनाया है, तो दूसरी तरफ 'अंतर्वंशी' उपन्यास में डॉक्टर सारिका जैसे पात्र भी नजर आते हैं, जो यह जानने के बाद कि उसका प्रेमी जहांगीर मल्लिक विवाहित है और अपनी पत्नी के होने के बावजूद अमेरिका में सारिका से विवाह कर साथ रहना चाहता है, तो वह उसके साथ संबंध विच्छेद कर लेती है। सारिका के अनुसार ऐसा संबंध अनैतिक है। वह अपने सुख के लिए किसी विवाहिता स्त्री का अधिकार नहीं छीन सकती।[24] अमेरिकी संस्कृति में सामाजिकता का नितांत अभाव होता है। वहाँ का व्यक्ति व्यक्तिवादी और आत्मकेंद्रित होता है। मानवीय संबंधों और रिश्तों के प्रति भी उपयोगितापरक नजरिया हावी होता है। इसी कारण रिश्तों में भावुकता का नितांत अभाव होता है। वहाँ मादक और नशीले पदार्थों का भी खुलकर सेवन होता है, जिसका जिक्र हम 'ट्रिप' कहानी में पाते हैं। डिस्को, बार, पब, क्लब जैसे केंद्र युवाओं ही नहीं अधेड़ उम्र के लोगों के लिए भी आकर्षण का केंद्र होते हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों में भी कोई नैतिकता का प्रश्न खड़ा नहीं होता। विवाह पूर्व, विवाहेतर काम संबंध हो या लिवइनरिलेशन, किसी भी संदर्भ में प्रवासी पीढ़ी अमेरिकन से पीछे नहीं रहती। 'शेषयात्रा' उपन्यास का प्रणव विवाहेतर प्रेम संबंध के कारण अपनी पत्नी अनुका से संबंध विच्छेद कर लेता है। अमेरिका में रह रही अनुका ऐसी स्थिति में खुद को असहाय और अकेला महसूस करती है- "प्रणव को कोई समझाता क्यों नहीं? कोई जाकर समझदारी से बात करे तो शायद प्रणव लौट आए। मगर इंडिया होता तो क्या मामा लोग समझाते-बुझाते नहीं? जोर नहीं डालते? यहाँ तो कोई..."[25] अनुका अगर भारत में होती, तो प्रणव उसे अकेली छोड़ने की हिम्मत नहीं कर पाता। उसके परिवार वालों और समाज का दबाव प्रणव पर होता, पर अमेरिका का समाज सिर्फ सुख का साथी होता है। जब तक अनुका डॉक्टर प्रणव की पत्नी थी, तब तक उसकी कितनी सहेलियाँ थीं, जो हर सप्ताह

बड़ी-बड़ी पार्टियों में शामिल होती थीं, पर आज जब अनुका अकेली है, तो उसे उसका साथ देने वाला, दुख बाँटने वाला, ढाँढस देने वाला कोई नजर नहीं आता। उसकी किटी पार्टी की सहेलियाँ एक-एक कर अपना पल्ला झाड़ लेती हैं। अनु यह दुख झेल नहीं पाती। वह पागल हो जाती है। उसे मेंटल एसाइलम में रखा जाता है। वहाँ अनु देखती है कि यह सिर्फ उसकी नहीं है, बल्कि एसाइलम में रह रही अधिकांश महिलाओं की कहानी है। ऐसी विपरीत परिस्थिति में उसकी बचपन की सहेली दिव्या उसका साथ देती है और उसे जीवन के प्रति प्रेरित करती है। लेखिका ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि प्रवासी जीवन में आने वाली विपदा के समय भी अपने स्वदेशी लोग ही काम आते हैं।

प्रवासी पीढ़ी विदेश में चाहे जितना भी संघर्ष कर रही हो, पर वह नहीं चाहती कि भारतीय रिश्तेदार उसकी स्थिति से अवगत हों। वह भारत लौट कर अपनी संपन्नता और वैभव का झूठा प्रदर्शन करने में सुख का अनुभव करती है। '*अंतर्वंशी*' उपन्यास की वाना का यह विचार इसका ज्वलंत साक्ष्य प्रस्तुत करता है- "हर साल बनारस वापस जाये, आठ बड़े-बड़े सूटकेसों में खचाखच सामान ठूंसकर। ठीक है, भारत में सब मिलता है पर अपनी समृद्धि की नुमायश करने का भी एक सुख होता है।"[26] वाना अपने भारतीय रिश्तेदारों में संपन्नता का प्रदर्शन करना चाहती है, पर पति शिवेश की आर्थिक स्थिति उसके सपनों में बाधक बनती है। इसके रिश्तेदारों को लगता है कि- "चुनमुन (वाना के पुकार का नाम) बिटिया अमरीका में रानी बनकर रह रही है। वहाँ निरंतर बिजली पानी चलता है। खाने की इफरात, चिट्ठी रसा तक गाड़ी पर चढ़कर डाक बाँटता है। दूध-दही के नदी-नाले, सड़कें सोने चाँदी से पटी हैं, डालों में फलफूल नहीं, पैसे फलते हैं, तभी न जो आता है टमाटर जैसे लाल गाल होते हैं, सामान का अंत नहीं, ढेरों सूटकेस खुलते हैं, तो बर्तन, कपड़े, स्वेटर, घड़ियाँ, लाली, पाउडर, तमाम अल्लम-गल्लम।"[27] इसी कारण वाना यह सोचती है कि अगर वह खाली हाथ अपने देश लौटी, तो उसके रिश्तेदारों में उसकी कोई इज्जत नहीं रहेगी। अतः वाना अपने देश नहीं लौटने का निर्णय लेती है। वाना ही नहीं अधिकांश प्रवासी पीढ़ी ऐसे हाल में अपने देश नहीं लौटना चाहती। एक तरह अपनी असफलता का दबाव होता है, तो दूसरी ओर अपने रिश्तेदारों में स्वयं को सफल दिखाने का मोह, साथ ही विदेशी माहौल में उन्मुक्त जीवन-शैली का सुखद अहसास कारण कुछ भी हो पर कोई भी प्रवासी अपने देश लौटना नहीं चाहता। प्रवासी पीढ़ी की ऐसी मनःस्थिति को व्यक्त करती हुई उषा प्रियंवदा लिखती हैं- "पढ़े लिखे लोग एम. ए. पी-एच. डी., डॉक्टर टैक्सियाँ चलाते हैं, बैंकर अफसर लोग सड़क पर फल बेचते हैं, भले घरों की पर्दानशीन औरतें वेट्रेसों का काम करती हैं। कोई नहीं जाता, झूठ सच्चे कारण यह सभी रहना चाहते हैं।"[28] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि प्रवासी पीढ़ी विदेशों में चाहे जितने भी संघर्ष करे, आर्थिक तंगी का सामना करते हुए निम्न स्तर का काम करने को विवश हो जाए पर अपने देश लौट कर स्वयं को असफल

प्रमाणित करने को तैयार नहीं है। वह भारत में अपने परिजनों के इस सुखद भ्रम को बनाए रखना चाहती है कि वह सुखी और सफल है तथा उसके इसी सुख और सफलता के सपने भारतीय परिजन भी पालते लगते हैं एवं इस सुख की चाह में अपनी संतानों को प्रवासी बनाने के सपने देखने लगते हैं। अगर प्रवासी पीढ़ी अपने परिजनों से अपनी यथास्थिति की ईमानदार अभिव्यक्ति कर दे, तो शायद ही कोई माता–पिता अपनी संतानों को प्रवासी बनाने के सपने देखना चाहेंगे।

हम कह सकते हैं कि जब देश में ही गाँव और कस्बे से नगर–महानगर और फिर विदेश गमन के रूप में युवा पीढ़ी का प्रवास अनिवार्य जीवनचर्या हो चुका हो, तब जरूरी हो जाता है कि समय–समाज के समक्ष प्रवास के यथार्थ को उदाहरण स्वरूप प्रेरक विषय बनाया जाए। बेहतर और विकसित जीवन–बोध का पर्याय बन चुका अमेरिका विश्व के अन्य अनेक देश के युवा समाज के लिए करियर की दृष्टि से आकर्षण का केंद्र है। अमेरिका प्रवास आज विकास की अनिवार्य शर्त बन चुका है, इसीलिए पारिवारिक रिश्ते, प्रेम, विवाह, सारे के सारे मानवीय संदर्भ इसके समक्ष अर्थ खो चुके हैं। ऐसे में उषा प्रियंवदा का संवेदन संसार युवा पीढ़ी के प्रवास मोह के संदर्भ में एक प्रामाणिक उदाहरण है। बेहतर भविष्य की कामना में एक ओर भारतीय मूल्य एवं संस्कृति–बोध की तिलांजलि युवा पीढ़ी की संघर्ष गाथा का प्रस्थान है, तो दूसरी ओर नियति स्वरूप 'ब्रेन ड्रेन' और 'कल्चरल शॉक' जैसा विडंबनात्मक परिणाम अत्यंत ही त्रासद दिशा–बोध है। जिन भारतीय मूल्यों की व्यर्थता को युवा पीढ़ी प्रतिक्षण महसूस करती है, वे प्रवास काल में स्मरण और गौरव का विषय बनकर रह जाते हैं। परिवार से दूर जरूरी परिवार–बोध के बावजूद अकेलेपन का दंश प्रवासी युवा पीढ़ी का नियतिपरक यथार्थ रचता है। विशेषकर करियर लोभ में परिघटित विद्यार्थी जीवन भारतीय माता–पिता के लिए चाहे कितना ही त्रासद क्यों ना हो, युवा पीढ़ी यथास्थिति के साथ समझौता करने को विवश रहती है। उषा प्रियंवदा ने प्रवासी पीढ़ी के संघर्ष के चरम बिंदुओं को उद्घाटित किया है। भौतिक समृद्धि के साथ बेहतर और सुखद भविष्य की कामना में भारतीय मूल्य व संस्कृति बोध से आत्मनिर्वासित प्रवासी पीढ़ी स्वयं को ठगा हुआ पाती है। स्थितप्रज्ञ–सा उनका जीवन भारतीय युवा पीढ़ी के लिए एक जरूरी सबक बन जाता है। इस कारण उषा प्रियंवदा के कथा संसार में प्रवास काल के दौरान परिघटित संघर्ष गाथा भारत जैसे विकासशील देशों की युवा पीढ़ी के लिए बेहद जरूरी विमर्शमूलक आयाम के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है।

संदर्भः

1. अंतर्वंशी, उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ. 172
2. संपूर्ण कहानियाँ, 'स्वीकृति', उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण–2006, पृ. 369

3. रुकोगी नहीं राधिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, 11वाँ संस्करण–2015, पृ. 102

4. बनवास, 'एक और विदाई', उषा प्रियंवदा, पेंगुइन बुक्स, प्रथम संस्करण–2009, पृ. 107

5. 'प्रवासी जगत', प्रवासी साहित्य की अवधारणा, ज्ञानेंद्र कुमार, आषाढ़ भाद्रपद, 2077 / जुलाई सितंबर, 2020, पृ. 110

6. रुकोगी नहीं राधिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, 11वाँ संस्करण–2015, पृ. 71

7. शेषयात्रा, उषा प्रियंवदा राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण–2014, पृ. 85

8. संपूर्ण कहानियाँ, 'टूटे हुए', उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण–2006, पृ. 303

9. वही, 'शून्य', पृ. 430

10. भया कबीर उदास, उषा प्रियंवदा, राजकमल पेपरबैक्स, पहली आवृत्ति–2011, पृ. 71

11. शेषयात्रा, उषा प्रियंवदा राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण–2014, पृ. 38

12. भया कबीर उदास, उषा प्रियंवदा, राजकमल पेपरबैक्स, पहली आवृत्ति–2011, पृ. 70

13. बनवास, 'एक और विदाई', उषा प्रियंवदा, पेंगुइन बुक्स, प्रथम संस्करण–2009, पृ. 117

14. वही, पृ. 110

15. रुकोगी नहीं राधिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, 11वाँ संस्करण–2015, पृ. 78

16. अंतर्वंशी, उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ. 127

17. संपूर्ण कहानियाँ, भूमिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण–2006, भूमिका, पृ. 15

18. बनवास, उषा प्रियंवदा, पेंगुइन बुक्स, प्रथम संस्करण–2009, पृ. 131

19. संपूर्ण कहानियाँ, 'चाँदनी में बर्फ पर', उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण–2006, पृ. 297

20. वही, 'म्यूजिक अक्रॉस द सी', पृ. 269

21. वही, पृ. 270

22. अभिव्यक्ति, 4.4.2011, प्रवासी हिंदी साहित्य में परंपरा, जड़ें और देशभक्ति, मनोज श्रीवास्तव

23. अंतर्वंशी, उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ. 31–32

24. वहीं, पृ. 76

25. शेषयात्रा, उषा प्रियंवदा राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण–2014, पृ. 82

26. अंतर्वंशी, उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ. 70

27. वहीं, पृ. 67

28. वही, पृ. 79

❑❑

हिंदी साहित्य में नई दस्तक – अर्चना पैन्यूली

सरोजिनी नौटियाल

साहित्यकार अर्चना पैन्यूली एक लंबे समय से उत्तरी यूरोप के एक छोटे से स्कैंडिनेवियन देश डेनमार्क में रह रही हैं। हिंदी के प्रवासी साहित्यकारों में डेनमार्क से वे अकेली हैं। सुदूर यूरोप के उस ठंडे–जमे मुल्क में अर्चना से पूर्व भी एकाएक कोई नाम सम्मुख नहीं आता। अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान में डेनमार्क में हिंदी के प्रवासी साहित्य की ध्वजा थामे अर्चना एकमात्र लेखिका हैं। इस प्रकार हिंदी साहित्य के संदर्भ में अमेरिका, इंग्लैंड आदि बहुचर्चित देशों के बीच अनस्तित्वमान से रहे डेनमार्क को प्रमुखता से उभारने का श्रेय अनायास कलम की धनी अर्चना पैन्यूली को चला जाता है। यह कहना भी कोई अतिरेकपूर्ण नहीं होगा कि विश्व मंचों पर अपेक्षाकृत अचर्चित–उपेक्षित देश डेनमार्क को अर्चना ने चर्चित कर दिया – निश्चित ही साहित्यिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में। हिंदी भाषी भारतीयों की संख्या को देखते हुए डेनमार्क को यह अर्चना का प्रतिदान है। उनकी रचनाओं से हमें एक अलग परिवेश, स्कैंडिनेविया प्रायद्वीप के मानव जीवन और व्यवस्था को प्रमुखता से जानने–समझने का अवसर मिलता है। अपनी सूक्ष्म अवलोकन शक्ति और अद्भुत लेखन कौशल से अर्चना ने डेनमार्क के सामाजिक जीवन का चित्र ही उपस्थित नहीं किया बल्कि वहाँ के आम लोगों की सत्यनिष्ठा, स्पष्टता, सरलता, नियमबद्धता, तटस्थता, मानवीय मूल्य, लोकतांत्रिक आचरण और राज्यप्रदत्त नागरिक सुरक्षा जैसी विशिष्टताओं को भी उजागर किया। चूँकि अर्चना के लेखन का फलक बहुत फैला हुआ है, अतः उनकी कलम से विश्व के भिन्न–भिन्न भू–दृश्यों में पसरी मानव सभ्यता की झलक भी देखने को मिलती है।

उनके खाते में अब तक चार उपन्यास, तीन कहानी संग्रह, डेनिश उपन्यास का हिंदी अनुवाद और साठ–सत्तर कहानी–लेखों का अच्छा–खासा संकलन है। साहित्यिक जगत में उनका नाम एक जाना–माना हस्ताक्षर है। देश–विदेश के हिंदी मंचों पर उनकी उपस्थिति देखी जाती है। साहित्यिक जगत के कई पुरस्कारों से वे सम्मानित हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान के द्वारा उन्हें प्रवासी हिंदी पुरस्कार से नवाजा गया है। मध्य प्रदेश सरकार उनको साहित्य

का गौरवपूर्ण सम्मान निर्मल वर्मा पुरस्कार प्रदान कर चुकी है। यही नहीं, विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में उनकी रचनाओं का प्रवेश हो चुका है। उनकी कृतियों पर शोधार्थी शोध कार्य कर रहे हैं। उनके उपन्यासों का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है। और इन सबके ऊपर, अभी उनका लेखन गतिमान है। आशा है, उनके अविराम सृजन से हमारा साक्षात्कार होता रहेगा।

इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि कथाकार अपने पात्रों के बीच छुप कर बैठा रहता है। अतः लेखक के जीवन परिचय की एक झलक से उसके कथ्य को समझने की दृष्टि मिलती है। चलिए अर्चना के कृतित्व को जानने से पहले उनके व्यक्तित्व को जानने का उपक्रम करते हैं।

अर्चना एक मध्यमवर्गीय परिवार से हैं। उनका जन्म वर्ष 1963 में उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर में हुआ था। मूल रूप से वे उस समय के उत्तर प्रदेश और आज के उत्तराखंड राज्य के पर्वतीय क्षेत्र गढ़वाल के चमोली जनपद में देवल गाँव की हैं। गढ़वाल हिमालय की पर्वत श्रेणियों की गोद में बाहरी हलचलों से अप्रभावित देवल गाँव भगवान बदरीनाथ के परम धाम मार्ग पर स्थित गौचर कस्बे से खड़ी चढ़ाई पर छह किलोमीटर की दूरी पर है। पिता महीधर देवली राज्य के आबकारी महकमे में अधिकारी थे। माता बच्ची देवी सद्विचारों की बहुत धर्मपरायण स्त्री थीं। विशेष बात यह थी कि वे साक्षर थीं और पढ़ने में गहरी रुचि रखती थीं। धार्मिक पुस्तकों के नियमित अनुशीलन के अतिरिक्त समाचार-पत्र और सामाजिक पत्रिकाओं का पठन भी उनकी दिनचर्या में शामिल था। रेडियो से प्रसारित होने वाले नाटक- रूपकों का श्रवण और फिर उन पर टिप्पणी-चर्चा स्कूली शिक्षा में विज्ञान पढ़ने वाले भाई-बहनों के परिवार में साहित्य का वातावरण सृजित करता था। उस दौर की लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाएँ – चंदामामा, साप्ताहिक हिंदुस्तान और अखंड ज्योति घर में नियमित आती थीं। नौ भाई-बहनों के भरे-पूरे परिवार में अर्चना आठवें क्रम में हैं। सभी अध्ययनशील थे। पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखते थे। अतः जीवन के प्रारंभ से ही उन्होंने स्वयं को पुस्तकों से घिरा पाया। कहा जा सकता है कि साहित्य का संस्कार अर्चना को विरासत में मिला है।

एक विशेष बात जिसका अर्चना और सभी भाई-बहनों पर गहरा प्रभाव पड़ा, वह थी पिता का जीवन संघर्ष और अदम्य साहस। शैशवावस्था में ही अपने पिता को खो चुके पिता का बाल्यकाल घोर अभावों और कष्टों में बीता। अपनी विकट पारिवारिक और भौगोलिक परिस्थितियों से दो-दो हाथ करते उन्होंने दसवीं तक की पढ़ाई सफलता पूर्वक पूरी की। प्रतियोगी परीक्षा की चुनौती पार कर के आबकारी विभाग में सीधे आबकारी निरीक्षक के पद पर नियुक्त हो गए। जीवन के संघर्षों ने अनुशासन का जो पाठ पढ़ाया वह ताउम्र उनकी कार्यशैली का हिस्सा रहा। उन में गजब का आत्मबल था। उनकी कर्मठता, कर्तव्यपरायणता,

सहयोगी प्रवृत्ति और हार न मानने वाली चित्तवृत्ति से परिवार में ऊर्जा का संचार होता था। स्वाभाविक है कि बच्चों में भी लगनशीलता के गुणों का समावेश हो गया।

ऐसे साहित्यिक और ऊर्जस्वित पारिवारिक परिवेश में बच्चों ने आशानुरूप उपलब्धियाँ हासिल कीं। पिता के राजकीय सेवा में होने के कारण परिवार को राज्य के विभिन्न स्थानों को देखने-जानने का अवसर मिलता रहा। लेकिन स्थाई डेरा बना शिवालिक पर्वत श्रेणी की तलहटी पर बसा शांत, सुंदर और अभिजात्यता का स्पर्श लिए देहरादून। देहरादून में पहाड़ का ठहराव है और मैदान की गति। प्रतिष्ठित दून स्कूल के अतिरिक्त कई अच्छे शिक्षण संस्थाओं की उपस्थिति ने देहरादून को शिक्षा का केंद्र बना दिया है। इसी देहरादून में अर्चना की प्रारंभिक शिक्षा से लेकर स्नातकोत्तर तक की शिक्षा निर्बाध रूप से संपन्न हुई उनकी अधिकांश शिक्षा क्षेत्र के जाने-माने महादेवी कन्या विद्यालय में हुई तब का महादेवी कन्या विद्यालय अपनी विदुषी शिक्षिकाओं, मूल्यों, स्थिति, विशालता, विविधता, संसाधनों और गतिविधियों से छात्राओं के व्यक्तित्व में एक निखार लाता था। यहीं अध्ययन करते हुए उनका लेखन-कार्य शुरू हो गया था। वर्ष 1985 में अर्चना का विवाह डॉ. ज्योति प्रसाद पैन्यूली से हुआ। डॉ. पैन्यूली इंजीनियरिंग कॉलेज रुड़की से इंजीनियरिंग की पढ़ाई और आई.आई.एम. बंगलौर से पी-एच.डी. करके इंदिरा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च एंड डेवलप्मेंट, बम्बई में बतौर वैज्ञानिक तैनात थे।

मुंबई में अर्चना का लेखन परवान चढ़ा। विज्ञान शिक्षिका होते हुए भी उन्होंने विद्यालय में होने वाली साहित्यिक गतिविधियों में लेखन कौशल के बल पर अपनी पहचान बना ली थी। इधर, वाद-विवाद, भाषण प्रतियोगिताओं और नाटकों-रूपकों के मंचन की तैयारी हेतु विद्यालय में अर्चना की पुकार मची रहती, उधर, देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ और लेख प्रकाशित होने लगे। समय के साथ-साथ साहित्यिक जगत में उनकी पहचान बनने लगी। इसी बीच वर्ष 1997 में डॉ. पैन्यूली ने कोपेनहेगन, डेनमार्क के एक रिसर्च इंस्टीट्यूट द्वारा प्रस्तावित नौकरी स्वीकार कर ली और वे परिवार, जिसमें अब पत्नी अर्चना के साथ-साथ दो पुत्रियाँ भी थीं, को लेकर डेनमार्क आ गए।

डेनमार्क में अर्चना के लेखन का स्वर्णिम अध्याय आरंभ हुआ। उपन्यास, कहानी और लेख जैसी साहित्यिक विधाओं पर उनकी लेखनी परिपक्व होती चली गई देश के प्रथम श्रेणी के प्रकाशन गृहों से उनकी कृतियों का प्रकाशन होने लगा। साहित्यिक सभा-गोष्ठियों में उनकी चर्चा-परिचर्चा सामान्य बात हो गई पत्र-पत्रिकाएँ उनके वक्तव्यों को प्रमुखता से छापने लगीं। विश्व हिंदी सम्मेलनों, लिट्-फैस्टीवल और देश-विदेश के विश्वविद्यालयों में उनकी उपस्थिति महत्वपूर्ण होने लगी। कई रचनाकार अपनी पुस्तकों पर उनकी टिप्पणी, समीक्षा और वक्तव्य के लिए निवेदन करने लगे और, देखते ही देखते अर्चना हिंदी जगत में

अपने पूरे दावे के साथ स्थापित हो गईं। आलोचना–समालोचना–मूल्यांकन अपना काम करते रहेंगे लेकिन इतना तो कहा जा सकता है कि पिछले दो दशकों में आए उनके चार उपन्यासों और तीन कहानी संग्रहों ने हिंदी साहित्य के ठहरे जल में एक हलचल मचा दी है।

2003 में अभिरुचि प्रकाशन से प्रकाशित उनका प्रथम उपन्यास 'परिवर्तन' उत्तराखंड के पहाड़ों की पृष्ठभूमि पर आधारित है। 'परिवर्तन' के माध्यम से लेखिका ने रुक्मणी, रत्ना, उषा और प्रिया तक की चार पीढ़ियों में स्त्री की स्थिति और सोच में जो आलोड़न आया है, उसे रोचकता और मजबूती से कथा के ताने–बाने में पिरोया है। हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार हिमांशु जोशी ने उपन्यास की भूमिका लिखी है।

रत्ना उपन्यास की मुख्य पात्र है। रत्ना ने वैधव्य का अभिशाप भोगा है। जेठ गंगाधर के सम्मानजनक और आत्मीय सरंक्षण के तले भी उसे अपने हिस्से का संपूर्ण दर्द सहना पड़ा है। यह उसके स्त्री होने की व्यथा का अनिवार्य अंग था, जिससे उसे कोई नहीं बचा पाया। उसकी पुत्री भी असमय, अकस्मात विधवा हुई, किंतु समय बदल चुका था। उषा ने हार नहीं मानी। अपने तरीके से जीवन जीने की हिम्मत रखी। माँ (रत्ना) के द्वारा बार–बार उसको विधवा होने का अहसास दिलाने पर उसका फट पड़ना, 'मैंने विधवा होकर कोई गुनाह नहीं किया। भारत–पाकिस्तान की लड़ाई में यदि अर्जुन अपनी जान गँवा बैठा तो इसमें मेरी कोई गलती नहीं है, मुझे जीने दो...' जीवन के महत्व के प्रति उसका नजरिया और स्त्री की सोच में आए बदलाव को दर्शाता है (पृष्ठ संख्या 362)।

2009 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित अर्चना पैन्यूली का दूसरा उपन्यास 'वेयर डू आई बिलांग' विस्थापन और प्रवास के बीच एक ठिठका हुआ प्रश्न है। भारत एक प्राचीन देश है। धर्म और जातियों की डोर में बंधी सामाजिक सरंचना में जन्में और पले व्यक्ति के लिए उपन्यास की नायिका रीना का 'टेक्नीकली डेनिश' और 'ट्रेडिशनली इंडियन' होना बहुत कुछ सोचने को मजबूर करता है। एकाएक 'वेयर डू आई बिलांग' शीर्षक का एक–एक शब्द गहरे अर्थों से लबालब हो जाता है और दुनिया के उन असंख्य लोगों से जुड़ जाता है जो धर्म, राष्ट्रीयता, भाषा–संस्कृति के लंबे ज्ञात–अज्ञात क्रम से निकल कर अपनी पहचान ढूँढते रहते हैं। उनके अतीत के चिह्न बड़े धूमिल हैं और भविष्य के चित्र बहुत अस्पष्ट। जो नजरों से दिखता है वह वर्तमान है और उसका भी रंग पल–पल बदल रहा है। उपन्यास के फैले हुए क्षितिज में यथार्थ और अध्यात्म है; अनुभव और रहस्य है; व्यवहार और दर्शन है; धर्म और पाखंड है; कानून और संवेदना है तथा संस्कृति और प्रकृति है। उपन्यास अपनी वैश्विक थीम के कारण विश्व साहित्य की श्रेणी में गिने जाने की क्षमता रखता है। संभवतः इसी वजह से अर्चना ने इसको अंग्रेजी में अनूदित किया जो रूपा पब्लिकेशन्स से प्रकाशित हुआ। विश्व की दो प्रमुख भाषाओं में होने के कारण 'वेयर डू आई बिलांग' की भाषिक व्यापकता भी बहुत हो गई है। यह भी उल्लेखनीय है कि डेनिश समाज को केंद्र में

रख कर हिंदी में लिखा गया यह पहला उपन्यास है। वर्ष 2012 में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मैमोरियल ट्रस्ट के तत्वाधान में आधुनिक हिंदी जगत के शीर्षस्थ आलोचक डॉ. नामवर सिंह की अध्यक्षता वाली चयन समिति द्वारा 'वेयर डू आई बिलांग' को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त प्रवासी हिंदी साहित्य पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

2016 में राजपाल एंड संस से प्रकाशित अर्चना पैन्यूली का तीसरा उपन्यास 'पॉल की तीर्थयात्रा' एक हारे हुए योद्धा की जीती हुई यात्रा है। उपन्यास पढ़ते-पढ़ते भावनाओं और विचारों में जो खलबली मचती है, वह चिंतन को उस स्तर पर ले जाती है, जहाँ हम मंच के पीछे छिपे कारकों को देखने लगते हैं, जीवन की उन मान्यताओं को पकड़ने लगते हैं जिन्होंने जीने की पद्धति दी है, संस्थाओं के मूल्यों को समझने लगते हैं जिनसे हमने जीने का सलीका सीखा है। यह अकारण नहीं है कि पचास की उम्र में पहुँचे बेटे पॉल के जीवन की अस्थिरता और अजीबो गरीब हालात देख उसकी माँ भी उसमें ऐब ढूँढ़ने लगती है और कह देती है-

'मेरी व्यस्तता और व्यवस्था का कारण मेरी नियमित दिनचर्या और निश्चित डगर है।' (पृष्ठ संख्या 140) अर्थात् एक अर्थपूर्ण जीवन के लिए संभली हुई जीवन शैली और उद्देश्य की दरकार होती है। यही नहीं, वह पॉल के अकेलेपन के लिए उसी को जिम्मेदार ठहराती हुई आगे कहती है- 'मेरा अकेलापन मेरी विवशता है, जबकि तेरा अकेलापन तेरा चुनाव।' यूरोपीय पृष्ठभूमि में मिश्रित संस्कृतियों में पोषित पात्रों के आग्रहों के परस्पर द्वंद्व की मर्मस्पर्शी कथा का ताना-बाना लेखिका ने जिस लय-ताल से बुना, वह उनकी रचना कला का वैशिष्ट्य है। ताने में यात्रा वृत्तांत और बाने में कथा-विन्यास, कहीं कोई गाँठ नहीं, कहीं कोई लोच नहीं।

2017 में प्रभात प्रकाशन समूह - ज्ञान गंगा से प्रकाशित कहानी संग्रह 'हाईवे E-47' में अलग-अलग दौर की भिन्न-भिन्न परिवेश में जी रही स्त्रियों की बारह कहानियाँ संगृहीत हैं। चाहे वह आम गृहिणी हो या कामकाजी महिला, उच्च पदस्थ अधिकारी हो या घरों में काम करने वाली बाई या फिर तवायफ, या फिर मुख्यमंत्री की पत्नी... समाज के हर वर्ग की महिला इसमें शामिल है। विविध नारी पात्रों को लेकर रचित इन कहानियों में नारी पीड़ा, नारी समस्या, नारी चेतना और नारी स्वभाव का व्यापकता और गहनता से चित्रण हुआ है। अनुजा, लक्ष्मी, कठिन चुनाव, गॉडमदर, मुख्यमंत्री की पत्नी, आदि सभी कहानियों में यथार्थ और कल्पना का समुचित समन्वय हुआ है। स्त्री-जीवन की विसंगतियों में टूटती-जूझती नारियाँ कभी हौसला अफजाई करती हैं, कभी मन को करुणा से भरती हैं तो कभी रोंगटे भी खड़े करती हैं। कहानी 'गॉडमदर' में वेश्या नीमा तमांग की यह फटकार - 'खबरदार कभी किसी वेश्या को वेश्या कहा। दस पुरुषों में एक रंडीबाज है, उनके धंधे ऐसे ही नहीं चल

रहे,' (पृष्ठ संख्या 192) एक वेश्या द्वारा आत्मग्लानि के कीचड़ को छिटक कर समाज के बदन में लगे कीचड़ की ओर जबरदस्त इशारा है।

संग्रह की कहानियों में एक जबरदस्त कशिश है। वे स्त्री–विमर्श के कई आयामों का स्पर्श करती हैं; पाठकों, विशेषकर स्त्री पाठकों को पहले विचलित करती हैं, फिर मायूस करती हैं और अन्ततः कमजोरी की ताकत का अहसास कराती हैं।

2019 में प्रभात प्रकाशन समूह –विद्या विकास एकेडमी से प्रकाशित अर्चना पैन्यूली का कहानी संग्रह 'कितनी माँएँ हैं मेरी' के केंद्र में माँ है– सृष्टि का आधार! प्रकृति और समाज के ताने–बाने में माँ के अनंत संभाव्य रूपों का निरूपण है– 'कितनी माँएँ हैं मेरी।' माँ शब्द स्वयं में सृष्टि की विराटता को समाहित किये हुए है। इसकी न कोई परिभाषा है और न व्याख्या। लेकिन जब माँ शब्द के पूर्व कोई उपसर्ग अथवा विशेषण लग जाए तो यही मातृत्व एक पूरा वृत्तांत बन जाता है।

माँ, सौतेली माँ, बिन ब्याही, धाय माँ, धरती माँ के परंपरागत रूपों से लेकर सिंगल मदर, सरोगेट मदर, गे मदर आदि रूपों में माँ की नई अवधारणाओं को लेकर लिखी गई कहानियों का संग्रह है 'कितनी माँएँ हैं मेरी'। वही चमक–धमक, वही बेबाकी, वही फैला परिदृश्य और वही ऊर्जा! अपने चिरपरिचित अंदाज में लेखिका ने बासी मान्यताओं की धूल झाड़ी है और नई चेतना का संचार किया है। कहानियों से छन कर यह भी निकल कर आता है कि यदि परिस्थिति न बदल सको तो नजरिया बदलो।

2020 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित 'कैराली मसाज पार्लर' कई पूर्वाग्रहों को धता दिखाता है। चार महाद्वीपों की पृष्ठभूमि में रचा उपन्यास 'कैराली मसाज पार्लर' ऐसी दुनिया पेश करता है, जिसमें भिन्न–भिन्न परिवेश में रह रहे पात्रों के संबंधों में प्रेम, त्याग, संघर्ष, आघात, मायूसी और जिजीविषा है। स्त्री प्रधान उपन्यास में नायिका नैन्सी इस दुनिया में अपने लिए एक ठोस ठिकाना खोजने के लिए संघर्षरत है। पति के अवैध संबंधों से निराश पत्नी, घरेलू हिंसा से पीड़ित पत्नी और क्रूर व अत्याचारी पति से सताई पत्नी की बेचारगी, आत्म ग्लानि, अपमान और संघर्ष के आख्यान को जिस प्रकार एक नई स्याही से लिखा, वह पाठकों को चमत्कृत करता है। यह यूँ ही नहीं है कि कन्नड़ साहित्यकार श्रीनाथ ने न केवल कैराली... का कन्नड़ में अनुवाद किया बल्कि कैराली मसाज पार्लर जैसा एक और उपन्यास लिखने की अर्चना से अपील भी की।

उपन्यास की नायिका नैन्सी तीन बार विवाह करती है। उसका पहला पति पादरी है। सुदर्शन, प्रभावपूर्ण उसमें कई खूबियाँ हैं जो नैन्सी के व्यक्तित्व को निखारने में सहायक होती हैं। लेकिन पर स्त्रीगामी है। उसका दूसरा पति, जो हिंसक प्रवृत्ति का है और जब–तब पत्नी को मारा–पीटा करता है, मगर रुपये–पैसों के मामले में वह नैन्सी को बिलकुल परेशान नहीं

करता। उसके दो-दो एटीएम कार्ड नैन्सी के पास रहते हैं। नये रिश्ते से जुड़ने के बाद उसे अपने पिछले पति के गुण नजर आने लगते हैं, जो सिद्ध करता है कि परिस्थितियाँ बदलने से हमारा नजरिया भी बदलता है।

नैन्सी का बड़ा बेटा जोशुआ परिस्थितिवश अपने पिता के पास पलता है। दूसरा बेटा भी उसे छोड़ कर अपने पिता के पास चला जाता है। उपन्यास में यह बात बड़ी टीस से उभर कर आयी है कि केवल प्राकृतिक रूप से ही किसी चीज का हकदार होना सब कुछ नहीं है, उसके लिए व्यक्ति में निर्वाह की क्षमता और समझ का होना भी जरूरी है। जीवन की अप्रत्याशित घटनाएँ हैरान करती हैं। कई हैरान-परेशान करने वाली बातों की भूमिका भी हम ही बनाते हैं। बहरहाल, नैन्सी अपनी खूबी-खामियों के साथ एक कर्मठ स्त्री है, जिंदगी के हर मुकाम पर वह कमर कस कर खड़ी है और जीवन को नये अर्थ दे देती है। वह एक कागज की ऐसी नाव है जो अंधड़ और तूफानों में गली नहीं। भीड़ में नितांत अकेले होने के दंश को उसने बार-बार भोगा, जिसकी चुभन पाठकों के हृदय को भी सालती रहती है। अनुभूति का ऐसा हस्तांतरण लेखिका के लेखन चातुर्य की एक पहचान बन चुका है। जहाँ वर्णन शैली परिवेश को जीवंत कर देती है वहीं कथाक्रम का प्रवाह रोमांच पैदा करता रहता है। एक महिला का स्त्री-पुरुष- दोनों के लिए मसाज सेंटर खोलना, स्त्री का एक उत्कृष्ट समुद्री तैराक होना, औरत का पचास साल की उम्र में माँ बनना आदि विषयों को लेकर जो हमारे सामाजिक पूर्वाग्रह हैं, यह उपन्यास उनको क्षीण करता है।

अर्चना पैन्यूली की रचनाओं में मानवीय मूल्यों की पैरोकारी है किंतु नैतिकता का कोई मुखौटा नहीं। मनुष्य अपने मूल रूप में जैसा है, वैसा ही चित्रित हुआ है। उनकी रचनाएँ केवल मनोरंजन ही नहीं करती बल्कि सामाजिक विमर्शों की ओर ध्यान भी आकृष्ट करती है; जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण व्यापक करती हैं; स्थापित सामाजिक प्रतिमानों की जकड़न को शिथिल करती हैं; धर्म के पाखंड को उजागर करती हैं; समाज के अचर्चित सत्यों को अनावृत करती हैं और उनको ग्लानि और घुटन के कोनों से निकाल कर खुली और ताजी हवा में लाने का साहसिक उपक्रम करती हैं। अर्चना पैन्यूली ने यह बात पूरे दमखम से सामने रखी कि सामाजिक अपवाद सामाजिक अपराध नहीं होता और, सामाजिक मान्यताओं से बड़े होते हैं- जीवन-मूल्य। उन्होंने स्त्री को उसकी परंपरागत छवि के संकुचित दायरे से निकाला है; उसके लिए नए मानदंडों की स्थापना की है। उन्होंने नारी को व्यक्ति की परिभाषा में व्याख्यायित किया है। अर्चना को पढ़ते हुए अनेक बार बंगला भाषा के प्रतिष्ठित साहित्यकार शरत चन्द्र चट्टोपाध्याय का स्मरण हो आता है। 'नारीत्व सतीत्व से बढ़कर होता है' का उद्घोष करने वाले शरत बाबू ने आज से सौ वर्ष पूर्व अपने लेखन से सामाजिक अन्याय और विसंगतियों का प्रतिकार किया था। अर्चना पैन्यूली की कहानियों में जीवन का जो सत्य निहित रहता है वह पाठकों के किसी न किसी अनुभव से इत्तफाक रखता है और यही बात पाठक को कथा से जोड़ देती है।

कथ्य के अनुरूप अर्चना के साहित्य का शिल्प भी आडंबरहीन है। वर्णन शैली में विस्तार है। कथाक्रम घटना प्रधान के साथ–साथ चरित्र प्रधान भी होता है। सीधी–सपाट और बेबाक बयानबाजी; चुस्त और चुटीले संवाद अर्चना की भाषा–शैली की पहचान बन गई है। हाँ, अर्चना को शब्दों की बनावट पर अपने को और साधना होगा। इसी प्रकार कहीं–कहीं वाक्य गठन में भी शिथिलता दिखी है।

लेखिका ने देश–विदेश का भ्रमण किया है। घटनाक्रम के द्वारा वे पाठकों को दुनिया–जहाँ की सैर करवा देती हैं। चिंतन में नयापन यदि अर्चना की कृतियों का प्राण–तत्व है तो पठनीयता को उनकी कृतियों की प्राण–शक्ति कहा जा सकता है। उनके कहानी–किस्से खुद को पूरा पढ़वाए बिना मानते ही नहीं!

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अर्चना पैन्यूली का लेखन जीवन को देखने–सोचने की नई दृष्टि देता है; अधिक सहिष्णु बनाता है; अपने से इतर बातों के लिए स्वीकार भाव पैदा करता है। उनकी कहानियों में एक नयापन है; खुलापन है; बदलाव की सुगंध है। हिंदी की सुविख्यात कथा–लेखिका ममता कालिया ने अर्चना पैन्यूली के लेखन पर अपनी महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हुए लिखा है– 'कथ्य और शिल्प के इलाके में उनकी कहानियों में हमें मुक्त पवन के झोंकों का एहसास होता है।

संदर्भः

1. उपन्यास 'परिवर्तन' 2003 – अभिरुचि प्रकाशन
2. उपन्यास 'वेयर डू आई बिलांग' 2010 – भारतीय ज्ञानपीठ
3. उपन्यास 'वेयर डू आई बिलांग' (अंग्रेजी अनुवाद) 2014 – रूपा पब्लिकेशन्स
4. उपन्यास 'पॉल की तीर्थयात्रा' 2016 – राजपाल एंड संस
5. कहानी संग्रह 'हाईवे E-47' 2018 – प्रभात प्रकाशन समूह ज्ञान गंगा
6. कहानी 'मैं कुमाता नहीं' इंडिया टुडे – साहित्य वार्षिकी 2018
7. कहानी संग्रह 'कितनी माँएँ हैं मेरी' 2019 – प्रभात प्रकाशन समूह विकास विद्या एकेडमी
8. उपन्यास 'कैराली मसाज पार्लर' 2020 – भारतीय ज्ञानपीठ
9. वार्ता, अर्चना पैन्यूली

❑❑

तेजेन्द्र शर्मा के सृजन का अंतर्लोक और रचना–दृष्टि

योगेन्द्र सिंह

सारः

तेजेंद्र शर्मा समकालीन हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। आपकी पहचान एक चर्चित कहानीकार, सफल संपादक और संवेदनशील कवि के रूप में की जाती है। तेजेंद्र शर्मा का साहित्य देश–विदेश की संवेदनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। यह अपने समय एवं समाज का संपूर्ण पाठ प्रस्तुत करते हुए यथार्थ के नए पक्षों को उदघाटित करता है। तेजेंद्र शर्मा की रचनाशीलता बहुआयामी हैं। यह स्वयं में कई पक्षों को समाहित किये हुए है। तेजेंद्र शर्मा की रचनाशीलता का आरंभ 1980 के दशक में होता है और यह अभी भी अनवरत रूप से जारी है। तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी लगभग पाँच दशकों की साहित्यिक साधना में अपार साहित्य लिखा है। आपने अपनी सृजन साधना में मानव जीवन के हर रंग–रूप की छटा को बिखेरा है। तेजेंद्र शर्मा के सृजन के अंतर्लोक का यही वैशिष्ट् बोध है कि यह देश–विदेश की गहन संवेदनाओं से युक्त हैं। आपकी रचनाशीलता की समृद्धता ही आपकी साहित्यिक पहचान की परिचायक है। प्रस्तुत शोध आलेख में तेजेंद्र शर्मा के सृजन के अंतर्लोक और रचनाशीलता के विविध पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है।

मुख्य शब्दः तेजेंद्र शर्मा, सृजन, साहित्य, अंतलोक, प्रवासी, संवेदना, दृष्टि।

आधुनिक हिंदी साहित्य लेखन में तेजेन्द्र शर्मा एक चिर–परिचित नाम है। आपने अपनी रचनाशीलता से हिंदी साहित्य संसार को देश–विदेश के अनुभवों से संचित ही नहीं किया है। अपितु साहित्य समीक्षकों को भी चिंतन के नए आयाम प्रदान किये हैं। तेजेन्द्र शर्मा का आनुभव क्षेत्र बहुत अधिक समृद्ध है। आपका यही अनुभव आपके सृजन का मूल बनता है। अपनी कई दशकों की साहित्यिक यात्रा में तेजेंद्र शर्मा ने अपार साहित्य सृजन किया है। तेजेन्द्र शर्मा की साहित्यिक यात्रा के कई पड़ाव हैं। आपकी रचनाशीलता का प्रथम पड़ाव; आपके सृजन का आंरभिक काल है। हिंदी साहित्य सृजन में आने से पूर्व तेजेंद्र शर्मा अंग्रेजी के विद्यार्थी थे। आपकी रुचि अंग्रेजी विषय के लेखन में थी। इसलिए आपके

सृजन का श्री गणेश भी अंग्रेजी साहित्य सृजन से ही होता है। तेजेंद्र जी अपने अंग्रेजी भाषा से जुड़ाव के विषय में कहते हैं "दिल्ली कॉलेज (अब डॉ. जाकिर हुसैन कॉलेज) से बीए ऑनर्स अंग्रेजी और बाद में पोस्ट ग्रेजुएट ईवनिंग इंस्टीट्यूट, दिल्ली विश्वविद्यालय से एम. ए. अंग्रेजी। एम.ए. करते करते लेखन का कीड़ा पूरी तरह से दिमाग में सक्रिय हो चुका था। हालाँकि कॉलेज और विश्वविद्यालय में अंग्रेजी एसोसिएशन का सचिव था। अंग्रेजी में कविता तथा कहानियाँ लिख लिया करता था। पहली बार गंभीरता से लिखने का काम किया एम.ए. फाइनल में। बायरन पर सीमाक्षात्मक पुस्तक प्रकाशित हो गई और इंदु जी के साथ विवाह से ठीक पहले 1978 में दूसरी पुस्तक जॉन कीट्स पर प्रकाशित हो चुकी थी।"[1] आपकी पत्नी इंदू जी हिंदी भाषी थी। उन्हें हिंदी भाषा एवं साहित्य से विशेष लगाव था। ऐसे में जब अंग्रेजी सोच-विचार वाले लेखक तेजेंद्र से उनका विवाह हुआ तो दोनों की रुचियों में आत्मसात होना लाजमी था। इंदु जी ने तेजेंद्र को हिंदी साहित्य लिखने को प्रेरित किया, इस प्रेरणा का प्रभाव यह हुआ कि तेजेंद्र जी का लेखक मन हिंदी साहित्य लेखन की ओर प्रवृत्त होता चला गया। इस विषय में तेजेन्द्र स्वयं लिखते हैं- "इंदू जी के संसर्ग में आने के बाद हिंदी में लिखने लगा। सोच अंग्रेजी की, लेखन हिंदी में सीधा-सीधा अनुवाद जैसा लगता था। इंदू जी ने मूलमंत्र दिया- अंग्रेजी के स्थान पर पंजाबी में सोचा करिए, आहिस्ता आहिस्ता हिंदी में सोचने लगेंगे और वही हुआ भी- आज मैं सपने भी हिंदी में देखता हूँ। अंग्रेजी और पंजाबी कहीं हाशिए पर चली गई है।"[2] यहाँ से आरंभ हुआ आपके लेखन का कारवाँ निरंतर आपकी रचनाशीलता में एक के बाद एक नए आयाम जोड़ता चला गया है। हिंदी में रचित आपकी पहली कहानी 'प्रतिबिंब', नवभारत टाइम्स (1980) अखबार में प्रकाशित हुई थी। आपकी दूसरी कहानी श्रीवर्षा पत्रिका, मुंबई (1982) में प्रकाशित हुई। आपकी तीसरी कहानी 'कड़ियाँ वर्तमान साहित्य पत्रिका में प्रकाशित हुई। इस तरह कहानी लेखन से आरंभ हुई, आपकी साहित्य साधना अपने विविध रूपों में सर्जना पथ पर प्रवाहमान रही है।

तेजेंद्र शर्मा का पहला कहानी संग्रह 'काला सागर' (1990) में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् 'ढिबरी टाईट (1994) तथा 'देह की कीमत (1999) संग्रह प्रकाशित हुए। ये तीनों कहानी संग्रह आपके लेखन के शुरुआती समय में लिखी गई कहानियों को समाहित किए हुए हैं। आपका कहानी संग्रह 'काला सागर' (1990) बहुत लोकप्रिय रहा है। इस संग्रह की शीर्षक कहानी 'काला सागर' कनिष्क विमान दुर्घटना पर आधारित है, यह कहानी मानवीय संबंधों में आई गिरावट व मूल्यहीनता का कच्चा चिट्ठा खोलती है। 'काला सागर' कहानी संग्रह में दस कहानियाँ हैं, ये सभी कहानियाँ भारतीय समाज में आई मूल्यहीनता का ही अनावरण नहीं करती अपितु मानवीय समाज की विघटनशीलता को भी उद्घाटित करती हैं। इस कहानी संग्रह में सम्मिलित कहानियाँ 'ग्रीन कार्ड', 'कड़ियाँ', 'तथा ईटों का जंगल

बहुत लोकप्रिय रही हैं। 'ईंटों का जंगल' कहानी मुंबई महानगर में आवास की समस्या को लेकर लिखी गई है। वहीं 'ग्रीनकार्ड' विदेशी वीज़ा की चाह में पिसते भारतीय युवक की मनोव्यथा को आधार बनाकर लिखी गई कहानी है। पियूष द्विवेदी इस संग्रह के वैशिष्ट्य को इस रूप में रेखांकित करते हैं। "तेजेन्द्र शर्मा का पहला कथा-संग्रह 'काला सागर' जो 1990 में प्रकाशित हुआ था, की कहानियों के विषय मोटे तौर पर पारिवारिक रिश्ते-नातों महानगरों में जीवन की जद्दोजहद और विमानन क्षेत्र से संबंधित विषयों पर आधारित है। इस प्रकार के विषय कोई संयोग नहीं थे बल्कि ये उस वक्त तक लेखक को मिली मानसिक खुराक का परिणाम थे। अड़तालीस साल का एक युवा जिसका बचपन अभाव से अधिक परिस्थितियों के कारण संघर्षमय रहा था, के मन में पारिवारिक रिश्तों के रोष की भावना होना स्वाभाविक ही था। परिवार के प्रति एक युवा का यह हल्का रोष अर्थ-संचालित पारिवारिक रिश्तों के खोखलेपन का शिकार समाज के अन्य लोगों से जब एकाकार हुआ तभी संभवतः 'रिश्ते', 'दंश' और 'कड़ियाँ', जैसी कहानियों ने आकार लिया होगा। ऐसे ही, विमान सेवा में कार्य करते हुए जब किसी दुर्घटना के पश्चात् कोई विद्रूप देखा होगा तो विमान दुर्घटना पर आधारित पहली कहानी 'काला सागर' की रचना हुई होगी।"[3] तेजेन्द्र शर्मा के पहले ही कहानी संग्रह में आपकी सृजन क्षमता के आभास हो जाते हैं। इसके बाद प्रकाशित हुए कहानी संग्रहों ने आपको एक सशक्त कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है।

तेजेन्द्र शर्मा का दूसरा कहानी संग्रह 'ढिबरी टाईट' (1994) आपकी सृजन चेतना को और अधिक विस्तार देता है। प्रथम कहानी संग्रह की भाँति ही इस संग्रह में भी कुल दस कहानियाँ हैं, यह कहानियाँ भारतीय समाज में व्याप्त विसंगतियों को रेखांकित करती हैं। इस संग्रह की प्रमुख कहानियाँ 'देह की कीमत', 'एक ही रंग', 'सिलवटें', 'दूसरे श्रवण की खोज' हैं। इन कहानियों की विषयवस्तु; भारतीय समाज व्यवस्था एवं उसमें आए बदलावों से जुड़ी हुई है। "1994 में आया अगला कथा-संग्रह 'ढिबरी टाईट'। अब तक तेजेन्द्र एयर इंडिया में कार्य करते हुए दुनिया छान चुके थे, जिसका प्रभाव इस संग्रह की कुछेक कहानियों में भी दिखाता है। इसका प्रमुख उदाहरण गल्फ देशों में बसे भारतीयों के दर्द को बयान करती संग्रह की शीर्षक कहानी 'ढ़िबरी टाईट' है। यह कहानी भारत में रहने वाला कोई कथाकार शायद उतना बेहतर नहीं लिख सकता था जितना तेजेन्द्र शर्मा ने लिखा है।"4 'ढ़िबरी टाईट' की कहानियों तक आते-आते तेजेन्द्र शर्मा की कहानी कला का पूर्ण विकास हो चुका था। भारतीय परिवेश के साथ-साथ विदेशी उड़ानों द्वारा विदेशी परिवेश के अनुभव ने तेजेन्द्र शर्मा के साहित्यिक केनवास को विस्तार दिया है। देश और विदेश का यही अनुभव हमें 'ढ़िबरी टाईट' कहानी संग्रह की कहानियों में देखने को मिलता है।

'ढ़िबरी टाईट' के बाद तेजेन्द्र शर्मा का तीसरा कहानी-संग्रह 'देह की कीमत' (1999) प्रकाशित हुआ। यह कहानी संग्रह कुल बारह कहानियों का गुलदस्ता है, इसमें 'देह

की कीमत', 'मलबे की मालकिन', 'कैंसर', 'चरमराहट', आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। ये कहानियाँ आपके देश-विदेश के व्यापक जीवनानुभवों का बोध कराती हैं। इस कहानी संग्रह की कहानी 'देह की कीमत' भारतीय परिवारों में अंतर्संबंधों की उदासीनता की कलई खोलती है। भारतीय परिवारों में अत्यधिक धन की चाह में बिखरते रिश्तों के सच को उद्घाटित करती यह कहानी तेजेन्द्र शर्मा की कहानी कला का उत्कृष्ट नमूना है। आपके कहानी-संग्रह 'देह की कीमत' (1999) में प्रकाशित हुआ। इस कहानी संग्रह में भी एयर इंडिया की नौकरी से मिले अनुभवों से संचित 'देह की कीमत', 'चरमराहट', 'कोष्टक' जैसी कहानियाँ हैं, जो साहित्यिक प्रतिमानों में खरी उतरती हैं। इन तीनों 'कहानी संग्रहों के पहचान एक सफल कहानीकार के रूप में हो जाती है।

तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों के पात्र व परिवेश उनके आस-पास से जुड़े हुए हैं। इसलिए पाठकों को इनसे गुजरना; अपने जीवन में झांकने जैसा है। अपनी कहानियों के परिवेश के विषय में स्वयं तेजेन्द्र शर्मा कहते हैं "दरअसल मेरे आसपास जो कुछ घटित होता है वह मुझे मानसिक रूप से उद्वेलित करता है। तब तमाम तरह के सवाल मेरे जहन में कुलबुलाने लगते हैं। उन सवालों से जूझते हुए सवाल जवाब का सिलसिला सा चल जाता है। तब मेरी लेखनी स्वयं चलने लगती है। मेरे तमाम पात्र मेरे अपने परिवेश में से ही निकल कर सामने आ जाते हैं और फिर पन्नों पर मेरी लड़ाई लड़ते हैं। कहीं किसी भी प्रकार का अन्याय होते देखता हूँ तो चुपचाप नहीं बैठ पाता। हारा हुआ इंसान मुझे अधिक अपना लगता है। उसका दु:ख मेरा अपना दु:ख होता है। जीतने वाले के साथ आसानी से जश्न नहीं मना पाता जबकि हारे हुए की बेचारगी अपनी सी लगती है।"[5] अपने समाज से कथाकर का यही जुड़ाव उनकी साहित्यिक प्रतिबद्धता का परिचायक है। तेजेन्द्र शर्मा के कथा पात्र उनके निकट परिवेश के साथ-साथ उनके स्वयं के जीवन से भी जुड़े दिखाई पड़ते हैं। आपकी कहानियों का पात्र 'नरेन' आपका लोकप्रिय पात्र है। इनकी अधिकांश कहानियों के पुरुष पात्र का नाम 'नरेन' ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि तेजेन्द्र शर्मा अपनी कहानी के पात्र 'नरेन' के चरित्र के रूप में स्वयं उपस्थित रहते हैं।

तेजेन्द्र शर्मा के लेखन का पहला पड़ाव 1980 से 1999 तक है। इस समय तक तेजेन्द्र शर्मा भारत में ही रहते थे। इस समय तक तेजेन्द्र शर्मा के तीन कहानी संग्रह 'काला सागर', 'ढ़िबरी टाईट' व 'देह की कीमत' प्रकाशित हो चुके थे। इस संग्रह की कहानियों में आपकी कहानी कला का पूर्ण विकास दिखाई देता है। तेजेन्द्र शर्मा जी अपनी कहानी लेखन की अवस्थितियों के विषय में लिखते हैं "मैं स्टाइल या स्ट्रक्चर को लेकर पहले से कुछ तय नहीं करता। विषय, चरित्र, घटनाक्रम सभी को अपने आप अपना रूप तय करने का मौका देता हूँ। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि तथ्य और शिल्प के स्तर पर जो बदलाव कहानी-लेखन में आ रहे हैं, मैं उनसे बचता फिर रहा हूँ। मेरी कहानियों में आपको वो सभी

तत्व भी मिलेंगे, लेकिन मेरे लिए यह सब एक अच्छी कहानी कहने के औजार भर हैं, कहानी से अधिक महत्वपूर्ण नहीं। कई बार मेरे चरित्र मुझसे बातें करते हैं और अपना स्वरूप अपनी भाषा (आवश्यकता होती है तो वे पंजाबी, मराठी, गुजराती या अंग्रेजी का उपयोग अपनी पृष्ठभूमि के अनुसार) खुद ही तय कर लेते हैं।"[6] इससे स्पष्ट होता है कि तेजेन्द्र शर्मा एक सहज रचनाकार हैं, आपकी कहानियों के चरित्र व घटनाक्रम आपके स्वयं के परिवेश से जुड़े हुए हैं।

"तेजेन्द्र शर्मा ने उन्हीं विषयों पर लिखा है जिन पर उनकी कलम स्वाभाविक रूप से लिख सकी। साहित्यिक विमर्शों या चर्चादायक विवादों की लालसा से प्रभावित होकर अस्वाभाविक या जबरन कुछ भी नहीं लिखा। ऐसे में यह कह सकते हैं कि तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में स्वाभाविकता ही उनकी सबसे अलग यूएसपी है और उन्हें स्वाभाविकता के रचनाकार के रूप में भीड़ से अलग करती है।"[7] तेजेन्द्र शर्मा के लेखन का यह दौर उनकी सृजन चेतना का प्रथम पड़ाव है इसमें आपने न केवल अपनी सृजन दृष्टि का विकास किया अपितु हिंदी कहानी संसार में नया अध्याय भी जोड़ा है। तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी आरंभिक कहानियों की रचना प्रक्रिया के विषय में लिखा है "मेरी शुरूआती कहानियाँ सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं, क्योंकि जीवन में कुछ न कुछ ऐसा घटित होता है जो लेखक को कलम उठाने के लिए प्रेरित भी करता है और मजबूर भी।"[8] वस्तुतः तेजेन्द्र शर्मा की सृजन चेतना सहज व स्वाभाविक है, अपनी लेखकीय प्रतिभा को आपने स्वयं तराशा है। आपको हिंदी लेखक बनाने का श्रेय आपकी पत्नी इंदू शर्मा को है। इंदू जी आपकी कहानियों की प्रथम पाठक थी। तेजेन्द्र शर्मा ने इन्हीं के प्रोत्साहन से हिंदी साहित्य सृजन आरंभ किया और एक कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

तेजेन्द्र शर्मा की रचनाशीलता का यह दौर उनकी रचनात्मकता का प्रथम पड़ाव है, इस समयावधि में तेजेन्द्र शर्मा का रचनात्मक परिवेश भारतीय समाज से जुड़ा रहा है। इस समय में प्रकाशित आपकी कहानियों में भारतीय समाज की विषमताओं और विघटन को उद्घाटित किया गया है। तेजेन्द्र शर्मा द्वारा रचित समस्त कहानियाँ आपकी रचनाशीलता का व्यापक कैनवास निर्मित करती हैं, जिसमें पाठकों को देश-दुनिया के विविध रंगों से रू-ब-रू कराया गया है।

तेजेन्द्र शर्मा के लेखन का दूसरा पड़ाव; उनके विदेश प्रवास से जुड़ा हुआ है। तेजेन्द्र शर्मा अपने ब्रिटेन प्रवास से पूर्व ही भारत में अपनी पहचान एक कहानीकार के रूप में बना चुके थे ब्रिटेन में आ बसने के बाद आपका अनुभव संसार सीधे तौर पर पाश्चात्य समाज व संस्कृति से जुड़ता चला गया। ब्रिटेन प्रवास में आपका पहला कहानी संग्रह 'बेघर आँखे' प्रकाशित हुआ। इसके बाद आपके 'दीवार में रास्ता' (2012), 'सपने मरते नहीं (2015), 'मौत... एक मध्यान्तर; (2017), 'तू उड़ता चल' (2020) आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

तेजेन्द्र शर्मा द्वारा ब्रिटेन प्रवास में रचित अधिकांश कहानियाँ प्रवासी भारतीय समाज के साथ ब्रिटेन के स्थानीय परिवेश को भी रेखांकित करती हैं। तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी इन कहानियों में भारतीय बनाम पाश्चात्य संस्कृति के द्वंद्व को भी उद्घाटित किया है। तेजेन्द्र शर्मा के प्रवास में किए गए सृजन के वैशिष्ट्य बोध के विषय में पियूष द्विवेदी लिखते हैं "नये विषय तो तेजेन्द्र शर्मा के प्रवास से पूर्व की कहानियों में भी हैं, परंतु प्रवास के पश्चात् इस नयेपन को और अधिक विस्तार मिला है। अनेक ऐसे विषय और पात्र, जो तेजेन्द्र शर्मा के साथ-साथ समग्र हिंदी कहानी के लिए भी एकदम अपरिचित थे, का समावेश प्रवास के बाद की उनकी कहानियों में दिखाई देता है।"[9] ब्रिटेन प्रवास के पश्चात तेजेन्द्र शर्मा की साहित्यिक दृष्टि का विस्तार हुआ है। उन्हें सृजन के नए अनुभव जगत से साक्षात्कार हुए हैं। फलतः उनके साहित्य में विषय विविधता का समावेश हुआ है। तेजेन्द्र शर्मा का ब्रिटेन में प्रवास उनकी सृजनात्मकता के उत्कृष्ट काल के रूप में सामने आता है। ब्रिटेन प्रवास में तेजेन्द्र शर्मा के लेखन को नयी जमीन तथा नया आकाश मिला है जो कि आपके सृजन में फलीभूत नजर आता है। तेजेन्द्र शर्मा की प्रवास में लिखी गई कहानियों में वर्ण्य-विषयों की वैविध्यता और अनुभव की प्रमाणिकता दोनों ही भाव परिलक्षित हुए हैं। तेजेन्द्र शर्मा लिखते हैं "अपने प्रवासी जीवन के बीस वर्षों में मैंने बहुत से नये थीम पकड़ने का प्रयास किया है। इसी के तहत 'कोख का किराया', 'जमीन भुरभुरी क्यों है', 'छूता फिसलता जीवन', 'इंतजाम', 'कल फिर आना', 'खिड़की', 'मुझे मार डाल बेटा' जैसी कहानियों ने मेरे अनुभव क्षेत्र को तो समृद्ध किया ही मेरे पाठकों को भी एक नये अनुभव क्षेत्र से परिचित करवाया।"[10]

आपका-'बेघर आँखे' कहानी संग्रह वर्ष 2007 में प्रकाशित हुआ है। 'बेघर आँखे' कहानी-संग्रह में ग्यारह कहानियाँ सम्मिलित हैं। जिनमें 'कोख का किराया', 'अभिशप्त', 'कब्र का मुनाफा', 'टेलीफोन लाइन', 'पासपोर्ट का रंग', 'एक बार फिर होती' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय रही हैं। इन कहानियों के पात्र भारतीय तथा उनका परिवेश ब्रिटेन या पाश्चात्य समाज से जुड़ा हुआ है। 'कब्र का मुनाफा' कहानी के पात्र खलील व जैदी हो या फिर 'अभिशप्त' कहानी का पात्र रजनीकांत हो; सभी का जुड़ाव ब्रिटेन के प्रवासी समाज से है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में प्रवासी भारतीयों की मनोव्यथा एवं पतनशीलता को परत-दर-परत उद्घाटित किया है।

इस विषय में पियूष द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है "लंदन प्रवास के बाद तेजेन्द्र शर्मा का पहला कहानी-संग्रह 'बेघर आँखें' 2007 में प्रकाशित हुआ जिसमें संकलित कहानियों में विषय के स्तर पर व्यापक बदलाव स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।"[11] तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में यह बदलाव पाश्चात्य समाज के प्रभाव में हुए हैं। पाश्चात्य समाज व संस्कृति से गहन संपृक्ति के कारण तेजेन्द्र शर्मा की कथा-दृष्टि ने परंपरागत कथा प्रतिमानों

से इतर कहानी कला के नए टूल्स ग्रहण किए हैं। तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में यह परिवर्तन केवल कहानी कला के स्तर पर ही नहीं बल्कि शैलीगत भी दिखाई देते हैं।

तेजेन्द्र शर्मा का पाँचवा कहानी संग्रह 'दीवार में रास्ता' 2012 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कहानियों में ब्रिटेन व भारतीय परिवेश की साझा झलक मिलती है। इस संग्रह में 'ओवरफ्लो पार्किंग', 'दीवार में रास्ता', 'इंतजाम', 'तरकीब' तथा 'कैलिप्सो', 'कल फिर आना' आदि कहानियाँ चर्चित रही हैं। ये कहानियाँ भारत एवं ब्रिटेन के समाज की गहरी थाह लेती हैं। तेजेन्द्र शर्मा की इन कहानियों का अंतर्लोक ब्रिटेन के प्रवासी भारतीय समाज व पाश्चात्य समाज के सामूहिक स्पंदन से मिलकर बना है। "अस्तु इस कहानी संग्रह की अधिकांश कहानियों का प्रतिपाद्य विषय ब्रिटेन में बसा प्रवासी भारतीय समाज रहा है। इस कहानी-संग्रह के प्रकाशन के समय तेजेन्द्र शर्मा लगभग एक दशक से अधिक का समय ब्रिटेन में गुजार चुके थे। वे यहाँ के सांस्कृतिक वैविध्य में घुल मिल गए थे। उन्हें यहाँ के वैचारिक खुलेपन ने न केवल आकर्षित किया था बल्कि सृजन के लिए एक नई अंतर्दृष्टि एवं परिवेश भी प्रदान किया था। ब्रिटेन में बसने के बाद लिखी गई तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में दो बातों का विशेष रूप से प्रवेश नजर आता है- मुसलमान और सेक्स। ऐसा नहीं है कि प्रवास पूर्व की कहानियों में ये बातें रही ही नहीं हैं, लेकिन प्रवास के बाद की कथा-रचना में लेखक का इन विषयों पर विशेष जोर दिखाई देता है।"[12] तेजेन्द्र शर्मा के सृजन में स्वच्छंदता पाश्चात्य समाज की प्रभावन्विती है। 'इंतजाम', 'कल फिर आना' जैसी कहानियों में पाश्चात्य समाज की उन्मुक्त जीवन-शैली तथा स्वच्छंदता को देखा जा सकता है।

'सपने मरते नहीं' (2015) तेजेन्द्र शर्मा का एक ओर लोकप्रिय कहानी संग्रह है। इस संग्रह में 'जमीन भुरभुरी क्यों है', 'सीली आँखों में भविष्य', 'हाथ से फिसलती जमीन', 'सपने मरते नहीं' आदि कहानियाँ चर्चित रही है। 'जमीन भुरभुरी क्यों है', इस संग्रह की सबसे चर्चित कहानी है। प्रवासी भारतीयों के गैर भारतीयों से विवाह के बाद की परिस्थितियों को इस कहानी में उजागर किया गया है। कहानी का पात्र नरेन है, वह ब्रिटिश नागरिक जैकी से विवाह करता है लेकिन विवाह के बाद वे दोनों आपसी ताल-मेल न बैठ पाने के कारण छटपटाहट में जीवन जीने को अभिशप्त हैं। तेजेन्द्र जी ने एक अन्य कहानी 'हाथ से फिसलती जमीन' में भी भारतीय विदेशी युवक-युवतियों के दांपत्य संबंधों के विघटन की समस्या पर दृष्टिपात किया है। "तेजेन्द्र शर्मा अपनी कहानियों में भारत से बाहर रहने वाले भारतीयों की पीड़ा को व्यक्त करते हैं। संवेदनात्मक धरातल पर यह पीड़ा कई स्तरों पर व्यक्त होती है। पीड़ा का एक और स्तर अपनी भारतीय परम्पराओं, लोक व्यवहारों, रीति-रिवाजों की स्मृति को अपने मन में बसाए विदेश में रहने की बाध्यता है तो दूसरा स्तर विदेशी परिवेश को आत्मसात न कर पाना है।"13 तेजेन्द्र शर्मा के कथा साहित्य में प्रवासी भारतीय समाज के यही अंतद्र्वंद्व उभरकर आते हैं।

आपका कहानी-संग्रह 'मौत... एक मध्यांतर', (2017) में प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में सम्मिलित कहानियों में मौत... एक मध्यांतर', 'विल्ज़डन जंक्शन', 'हथेलियों में कंपन', 'अंधेरे उजाले' चर्चित रही हैं। इस संग्रह की 'विल्जडन जंक्शन', 'प्यार की इंटेलेक्चुअल जुगाली', सुनो.... तुम सच कह रही हो', 'गंध', तथा 'अंधेरे उजाले' आदि कहानियों में प्रवासी भारतीय बनाम ब्रिटेन की साझी संस्कृति का चित्रण हुआ है। जबकि 'हथेलियों में कंपन', 'कशमकश', 'शवयात्रा' आदि कहानियों में विशुद्ध भारतीय परिवेश चित्रित हुआ है। इस संग्रह की कहानियों में ब्रिटेन में रह रहे प्रवासी भारतीयों की स्वार्थपरकता को रेखांकित किया गया है तो वहीं भारतीय समाज के बदलते जीवन दर्शन की भी कलई खोली गई है।

'तू चलता चल' (2021) तेजेन्द्र शर्मा का सद्य: प्रकाशित कहानी-संग्रह है। इस संग्रह में तेजेन्द्र शर्मा की एयरलाइन तथा अंडरग्राउंड रेलवे से जुड़ी कहानियों को स्थान दिया गया है। 'तू चलता चल' कहानी संग्रह तेजेन्द्र शर्मा के पूर्व प्रकाशित कहानियों का ही संग्रह है। तेजेन्द्र शर्मा ने लंबे समय तक एयरलाइन तथा ब्रिटिश अंडर ग्राउंड रेलवे की नौकरी की है। वहाँ से प्राप्त अनुभवों को उन्होंने अपनी कई कहानियों का वर्ण्य-विषय बनाया है। एयरलाइन व रेलवे से जुड़ी आपकी कई कहानियाँ है। जिनमें पाठकों से इन संसाधनों में यात्रा के दौरान प्राप्त अनुभवों को साझा किया गया है। इस संबंध में 'हाथ से फिसलती जमीन', 'विल्जडन जंक्शन', 'काला सागर', 'बुशी का भूत', 'ढ़िबरी टाईप' आदि कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय रही हैं। "तेजेन्द्र शर्मा का कथा साहित्य विषय की दृष्टि से विविधताओं से भरा साहित्य है। अब तक उन्होंने जितनी कहानियाँ लिखी हैं, उनमें अनेक हिंदी की सर्वश्रेष्ठ समकालीन कहानियों में रखी जाने योग्य हैं। एक क्लासिक कहानी के लिए जिस कथा-दृष्टि और मानवीय संवेदना की आवश्यकता होती है, उन तमाम तात्विकियों से बुनी गई उनकी कहानियाँ विशेष अध्ययन की अपेक्षा रखती हैं।"[14] यात्रा की पृष्ठभूमियों पर आधारित ये कहानियाँ भारतीय व पाश्चात्य समाज की नई तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। जिनमें संबंधों के बनने-बिगड़ने की सामूहिक झलक दिखाई देती है।

तेजेन्द्र शर्मा के विदेश प्रवास के इस दौर में सृजित साहित्य का वर्ण्य-विषय और परिवेश भारत व ब्रिटेन के संयुक्त परिवेशों से समृद्ध हुआ है। तेजेन्द्र शर्मा के प्रवास की कहानियाँ प्रवासी भारतीय समाज को यथार्थनुभूति प्रदान करती है तो साथ ही ब्रिटिश समाज व जीवन-शैली की भी गहन पड़ताल करती है। तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी संपूर्ण जीवन यात्रा में जो अनुभव संसार संचित किया है उन्हीं की यथार्थ अभिव्यक्ति आपके साहित्य में हुई है। तेजेन्द्र शर्मा की रचनाशीलता के विषय में डॉ. राधेश्याम सिंह लिखते हैं, "तेजेन्द्र शर्मा का कथाकार बहुत सूक्ष्म कथा तंतुओं से कथा का ताना-बाना बुनने में माहिर है। अनुभूति की प्रमाणिकता और अभिव्यक्ति की ईमानदारी उनकी विशेषता है। भाषा की प्रवाहशीलता

पाठक को बाँधे रहती है और एक ही साथ स्वदेश और प्रवास के देश में आवा-जाही कराती रहती है।"[15] वस्तुतः तेजेन्द्र शर्मा के प्रवास का यह दौर उनकी रचनाशीलता का स्वर्णिम काल है, जिसमें देश-विदेश की बहुरंगी छवियाँ उनकी रचनाशीलता में परिलक्षित हुई हैं।

तेजेन्द्र शर्मा का साहित्यिक रूप बहुआयामी है। आपने, लेखन के साथ-साथ सृजन की अन्य विधाओं में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। आपने काव्य एवं ग़ज़ल विधाओं में भी अपनी रचनात्मक पहचान बनाई है। आपने अपने जीवन के सूक्ष्म अनुभवों को अपनी कविताओं में उद्घााटित किया है। तेजेन्द्र शर्मा ने अपने काव्यालोक में अपनी निजी अनुभूतियों को सामाजिक-साहित्यिक धरातल प्रदान किया है। आपकी कविताएँ, मानव मन की गहन अनुभूतियों का संवहन करती हुई मानवीय चेतना का व्यापक लोकवृत्त निर्मित करती हैं। डॉ. फतेह सिंह, तेजेन्द्र शर्मा की काव्य दृष्टि को इस रूप में परिभाषित करते हैं "तेजेन्द्र शर्मा की इन बहुमुखी प्रतिभा ने युग पुरुष बना दिया इसलिए इनका काव्य लोक जीवन में मानवीय चेतना का संचार करने वाला है, जिसको सामान्य जन के क्रिया-कलापों के माध्यम से व्यक्त किया है। तेजेन्द्र शर्मा एक ही कविता में भिन्न-भिन्न स्तरों पर अपने रचना कौशल का परिचय देते हैं। इन्होंने यह शक्ति आम जीवन में प्रवेश करके प्राप्त की है, जिससे ये संवेदनशील कल्याणकारी भाव सम्पदा अर्जित करने में सफल हुए हैं। जिसके फलस्वरूप मानवीय चेतना की अभिव्यक्ति संभव हुई है। इनका काव्य तत्कालीन भारतीय एवं प्रवासी समाज, युग, लोक-मानव से संपृक्त है, जो मानवीय चेतना का परिचायक है।"[16] तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ जहाँ मानवीय समाज का विस्तृत परिदृश्य निर्मित करती हैं तो वहीं उनकी काव्य दृष्टि मानव मन की सूक्ष्म संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती है। अस्तु, तेजेन्द्र शर्मा की काव्य दृष्टि मानवीय चेतना का विश्व लोकवृत्त निर्मित करती है जिसमें आत्म वेदना का लोक वेदनात्मक स्वरूप चित्रित हुआ है। अपनी काव्य दृष्टि के विषय में तेजेन्द्र शर्मा लिखते हैं "मैं कविता सायास नहीं लिख सकता। जब कभी सायास लिखना होता है तो गद्य लिखता हूँ। पेशे से टे्रन ड्राईवर हूँ। कभी-कभी तो शेर लिखने की इतनी तलब उठती है कि किसी स्टेशन पर यदि गाड़ी पाँच मिनट के लिए भी रूकती है तो मैं रफ़ काग़ज पर अपने ख्याल उतार लेता हूँ। कविता एक बुखार की तरह उतरती हूँ, उसे रोकना संभव नहीं मेरी प्रिय विद्या ग़ज़ल है।"[17] इससे ज्ञात होता है कि कविता, तेजेन्द्र शर्मा के वैचारिक चिंतन का प्रतिफलन है। आपकी कविताएँ; मनुष्य के अंतर्मन की पीड़ा का संपुटन है जो कि मनुष्य की निजी अनुभूतियों को व्यापक धरातल प्रदान करती है।

मुधलता अरोड़ा इस विषय में लिखती हैं "चर्चित कथाकार तेजेन्द्र शर्मा कथाकार ही नहीं है बल्कि कविता, ग़ज़ल के क्षेत्र में भी अपनी उपस्थिति पूरी शिद्दत से दर्ज कराते हैं। उनके अनुसार गद्य और पद्य में अंतर होना चाहिए। यही वजह है कि उनका मन तुकांत कविताओं और ग़ज़लों में खूब रमता है। प्रवासी लेखकों की भाँति वे सिर्फ अतीत की बात

नहीं करते बल्कि जिस देश में वे रह रहे हैं, वहाँ की गतिविधियों से भी वास्ता रखते हैं और ये सभी सरोकार उनके कविता संग्रह 'ये घर तुम्हारा है', में खुलकर सामने आये हैं।"[18] तेजेन्द्र शर्मा कविता का संबंध भाव जगत से मानते हैं। वे भाव सौंदर्य के बिना कविता को प्राणहीन मानते हैं। उनके लिए कविता मनुष्य की आत्मिक अनुभूतियों की रचनात्मक अभिव्यक्ति है। कवि तेजेन्द्र शर्मा अपने मन की इन्हीं सहज अनुभूतियों को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं-

"तुम कहते हो भुला दूँ तुमको
नहीं आसान है भुलाना
उन दिनों, हफ्तों और महीनों को बस तुम ही थे हमारे सपनों में।
तुम ही हमारा सपना थे।
आसां नहीं होता
भुला देना सपनों को
तुम कहते हो भुला दूँ तुमको।"[19]

मानव जीवन अपने स्वजनों के बिना अपूर्ण है। मनुष्य के आत्मीय-जन ही उसके जीवन का आधार होते हैं। जो सदैव उसे आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इन काव्य पंक्तियों में तेजेन्द्र शर्मा ने अपने प्रियजनों की इन्हीं अनुभूतियों को सूक्ष्माभिव्यक्ति प्रदान की है। डॉ. नवीन नन्दवाना इस विषय में कहते हैं "वास्तव में कवि अपनी कविताओं के सहारे मानव प्रेम के भावों को अभिव्यक्ति देता है। वह ईश्वर प्राप्ति के लिए इंसान को अपना हृदय तलाशने का संदेश देता है। उसके लिए मंदिर-मस्जिद जाकर प्रार्थना या इबादत करने के बजाए आपसी प्रेम और सौहार्द्र को कवि महत्वपूर्ण मानता है। विदेशी जमीं पर रहते हुए भी अपनी माटी की महक को सदैव महसूस करता है। साथ ही जो धरा उसकी कर्मभूमि बनी है, वह उसकी श्रेष्ठताओं को स्वीकार करने में भी किसी प्रकार का कोई गुरेज नहीं करता। भारत भूमि से अपनापन सदैव हम उनकी कविताओं में महसूस कर सकते हैं।"[20]

तेजेन्द्र शर्मा का अपने देश व समाज से यही लगाव; उनकी कविताओं में दिखाई पड़ता है। आपकी कविताओं में निहित यही भारतबोध अनेक रूपों में उभरकर सामने आता है। डॉ. अशोक मर्डे इस विषय में लिखते हैं "तेजेन्द्र जी की अनेक कविताएँ हैं लेकिन कुछेक कविताओं में ही मानव अधिकारों का स्वर मुखर हो उठता है। वे भारतीय संस्कृति को कदापि न भूले हैं। प्रवासी साहित्यकार होने के बावजूद भी वे जिस राष्ट्र में रहते हैं उस राष्ट्र से भी उतना ही प्रेम करते हैं जितना अपनी मातृभूमि से करते हैं। उनका मानना है कि सुख शांति मानव के अधिकार हैं और उससे मानव को कभी भी विमुख ना होना पड़े। इस तरह की भावना अपने मन में संजोनेवाले वे एक नागरिक भी हैं। उनकी कविताओं में विषयों की

विविधता तो है ही साथ ही उनकी कविताओं में मानव अधिकारों की रक्षा तथा उसका समर्थन भी देखा जा सकता है।"[21] तेजेन्द्र शर्मा का यही मानवतावादी स्तर उनकी कविताओं में भी उद्‌घाटित हुआ है–

"आज हमने मिल के बीज बो दिया
जो न समझे सोचो सब ही खो दिया
फल इसके अगली पीढ़ी मिल के पाएगी
वो गीत एकता के मिल के गुनगुनाएगी
कहेगा बात सबको एक ही समाज
लगता हमें प्यारा है।"[22]

कवि का चेतस मन मानवीय एकता का आग्रही है। तेजेन्द्र शर्मा सामाजिक सद्‌भाव व मानवीय एकता में ही विश्व कल्याण का मार्ग तलाशते हैं। यही भाव आपकी उपरोक्त काव्य पंक्तियों में व्यक्त हुआ है। आप भारतीय समाज व संस्कृति से गहन रूप से संपृक्त हैं 'किंतु परंपराओं के रूप में हो रहे अन्याय के विरोधी है। वे भविष्य का निर्माण वर्तमान की बलि देकर करना नहीं चाहते हैं। तेजेन्द्र शर्मा का यही दृष्टिकोण उनकी कविताओं में प्रतिपादित हुआ है–

"परम्परा, संस्कृति और धर्म सब है झूठी शान
इनके कारण बसे हैं जग में कितने कब्रिस्तान।
अपने पुराने होने की सब डींगे हांके हैं।
लगता है नहीं बनानी इनको नई पहचान।
....
ये शोर भाषा धर्म का अब तुम मचाना छोड़ दो
बन जो सको तो बन के दिखाओ इक अच्छे इंसान।"[23]

तेजेन्द्र शर्मा के सृजन का दूसरा पक्ष प्रवास एवं प्रवासी समाज से संबद्‌ध है। प्रवासी जीवन की गहन संवेदनाओं को उन्होंने अपने काव्य में चित्रित किया है तो वहीं दूसरी ओर प्रवासी जीवन के द्वंद्व का अनावरण भी आपकी कविताओं में हुआ है। प्रवासियों की इन्हीं मनोस्थितियों को तेजेन्द्र शर्मा ने अपने काव्य में इस रूप में उकेरा है–

"यहाँ जो आ गया एक बार बस हमारा है
कहाँ कहाँ के परिंदे, बसे हैं आके यहाँ
सभी का दर्द मेरा दर्द, बस खुदारा है।
....

यह घर तुम्हारा है इसको न कहो बेगाना
मुझे तुम्हारा, तुम्हें अब मेरा सहारा है।"[24]

तेजेन्द्र शर्मा ने उपरोक्त पंक्तियों में ब्रिटेन के सतरंगी परिवेश के सौंदर्यबोध को रेखांकित किया है। "प्रवासी मन की व्यथा को हम उनकी अधिकांश कविताओं में देख सकते हैं। जितना याद वह अपनी मातृभूमि को करते हैं उतना ही कृतज्ञता का भाव उनकी कर्मभूमि के प्रति भी विद्‌यमान है। उनकी कविताओं में महानगरीय ऊब और अकेलेपन का वर्णन भी है और भौतिकतापूर्ण संस्कृति की अपेक्षा भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति में आस्था भी। उनकी कविता का धर्म आम आदमी के दर्द की बेबाक बयानी है और स्वयं उनका धर्म इंसानियत है।"[25] तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी कविताओं में प्रवास की द्‌वंद्‌वात्मक स्थिति का वर्णन किया है। प्रवास ग्रहण करने के बाद आपने एक ओर जहाँ ब्रिटिश समाज में प्रवासी भारतीयों की विघटित जीवन-शैली का अनावरण किया है तो वहीं पाश्चात्य समाज के जीवन-दर्शन को भी आत्मसात किया है। तेजेन्द्र शर्मा ने प्रवासी जीवन की इसी अवस्था को 'दोहरा नागरिक' कविता में रेखांकित किया है-

"मुझसे आना होने के माँगता है दाम
वो, जो कभी मेरा अपना था,
समझता है कमजोरी, दिल की मेरी
भावनाओं की मेरी उड़ाता है मजाक
कहता है सरे आम
चाहे रहो किसी और के भी
बस चुकाओ मेरे दाम
और लिख दो अपने नाम के साथ मेरा नाम।"[26]

प्रवासी व्यक्ति दोहरा दंश झेलता है। उनका प्रवासी देश उन्हें पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं कर पाता है और न ही वे वहाँ के परिवेश के साथ सामंजस्य बिठा पाते हैं। परिणामतः ये प्रवासी वहाँ रहकर भी वहाँ पर अपनी स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। प्रवासी भारतीयों की इसी द्‌वंद्‌वात्मक स्थिति को तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी कविता 'पासपोर्ट का रंग' में दर्शाया है-

"मेरा पासपोर्ट नीले से लाल हो गया है
मेरे व्यक्तित्व का एक हिस्सा
जैसे कहीं खो गया है।
मेरी चमड़ी का रंग आज भी वही है
मेरे सीने में वही दिल धड़कता है।
'जन गण मन' की आवाज आज भी

कर देती है मुझे सावधान!
और मैं, आराम से, एक बार फिर
बैठ जाता हूँ, सोचना जैसे टल जाता है
कि पासपोर्ट का रंग कैसे बदल जाता है।"[27]

भारत में दोहरी नागरिकता का प्रावधान नहीं है। ऐसे में प्रवासी देश की नागरिकता ग्रहण करने के लिए प्रवासी भारतीयों को अपने मूल देश की नागरिकता को छोड़ना पड़ता है। प्रवासी भारतीयों के लिए यह बड़ी दयनीय स्थिति है, जिसे ना चाहते हुए भी उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। प्रवासी व्यक्ति इस स्थिति को स्वीकार करने के बाद भी दुविधाग्रस्त रहता है। तेजेन्द्र शर्मा ने प्रवासी व्यक्ति की इस वेदना को अपने काव्य में प्रतिबिंत किया है।

"डरा–डरा–सा मैं रातों को जाग जाता हूँ
नींद आती है मगर सो नहीं मैं पाता हूँ।
जन्म जहाँ हुआ क्या देश वही होता है।
करम की बात को मैं क्यों समझ ना पाता हूँ।"[28]

प्रवासी समाज अपने मूल देश से हजारों मील दूर होने के बाद भी भावनात्मक रूप से जुड़ा रहता है। वह अपने मूल देश से सुदूर बैठकर भी आत्मीय रूप से जुड़ा रहता है। प्रवासी भारतीय समाज के अपने देश के प्रति इस भाव को तेजेन्द्र शर्मा ने इस रूप में दर्शाया है–

"ऐ इस देश के बनने वाले भविष्य
काश!
मैं तुम्हें
अपने देश का बनने वाला भविष्य
कह पाता! और मिलता मुझे
सुकून! शांति! और सुख!"[29]

तेजेन्द्र शर्मा ने उपरोक्त काव्य पंक्तियों में प्रवासी भारतीयों के अपने देश से भावनात्मक लगाव को रेखांकित किया है। प्रवासी भारतीय समाज; विश्व में कहीं भी हो, उसका अंर्तमन अपने देश भारत से जुड़ा रहता है। वह अपने निर्वासित देशों में रहकर भी अपने देश के प्रति चिंतित रहता है, प्रवासी भारतीयों की इसी चिंता को तेजेन्द्र शर्मा की उपरोक्त काव्य पंक्तियों में देखा जा सकता है।

तेजेन्द्र की काव्य चेतना प्राण तत्व मानवतावाद है। उनका यही भाव उनकी कविताओं में प्रस्फुटित हुआ है। डॉ. कामना पंड्या तेजेन्द्र शर्मा के काव्य के इसी वैशिष्ट्बोध के विषय में लिखती हैं "तेजेन्द्र शर्मा की कविताओं पर विचारोपरान्त कहा जा सकता है कि यद्यपि

अभी कहानीकार की अपेक्षा उनका कवि-व्यक्तित्व कम प्रखर हुआ है। क्योंकि तेजेन्द्र शर्मा स्वयं को मूलतः कहानीकार मानते हैं और कहानी को हर विधा की जननी। फिर भी उनकी कविताओं से उनकी मनोभूमि को जाना जा सकता है। वे सामान्य आदमी से जुड़े रहकर, सामान्य आदमी के दुख दर्द को बयान करती कविताएँ है। वे अपने कवि धर्म के प्रति अत्यंत सजग हैं और उनका अनुभव संसार बहुत व्यापक है। इसीलिए उनकी कविताओं के धरातल भी व्यापक हैं। भारतीय और पश्चिमी परिवेश दोनों का ही उन्हें अनुभव है और उनकी कविताओं में इन दोनों परिवेशों, वहाँ की सभ्यता संस्कृति को पर्याप्त स्थान मिला है।"[30] तेजेन्द्र शर्मा की कविताओं का यही भावबोध उनके कवि मन को दृष्टि प्रदान करता है। वस्तुतः तेजेन्द्र शर्मा मानवीय अनुभूतियों के कवि हैं। उनकी कविता का भाव बोध मानवीय चेतना ही है; उनकी यही चेतन दृष्टि उनकी कविताओं का वर्ण्य-विषय बनती है। जो कि उनके सृजन को नए सरोकारों से जोड़ती है।

कहानी कविता के साथ-साथ तेजेन्द्र शर्मा ने कथेतर साहित्य का भी सृजन किया है। इस रूप में आपका संपादकीय रूप विशेष चर्चित रहा है। शिवनारायण इस विषय में लिखते हैं- "तेजेन्द्र शर्मा ने साहित्येतर कार्य भी कई किए। उनकी रुचि की दिशाएँ भी कई हैं।"[31] तेजेन्द्र शर्मा का कथेतर रूप हमें ब्रिटेन से उनके संपादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका पुरवाई के संपादकीय लेखन में दिखाई देती है। पुरवाई में प्रकाशित आपके संपादकीय विशेष रूप से चर्चित व आकर्षण का केंद्र रहे हैं। तेजेन्द्र जी के इन संपादकियों में आपकी विचार दृष्टि का परिपक्व रूप उभरकर सामने आता है। तेजेन्द्र शर्मा के संपादकियों में भारत के साथ-साथ देश-दुनिया की बदलती स्थितियों पर गहन चिंतन किया गया है। आपका यही चिंतक रूप आपके संपादकियों को विशिष्टता प्रदान करता है। जो कि अनायास ही पाठकों को अपनी जद में ले लेता है।

तेजेन्द्र शर्मा के संपादकियों का संग्रह 'अपनी बात' (2022) नाम से दो खंडों में प्रकाशित हुआ है। 'अपनी बात' के दो खण्डों में आपके अब तक प्रकाशित संपादकियों को सम्मिलित किया है। तेजेन्द्र शर्मा की सद्यः प्रकाशित यह कृति 'अपनी बात' चिंतनपरक लेखों का संकलन है जिसमें पाठकों को देश-दुनिया के ज्वलंत मुद्दों से जोड़ा गया है। 'अपनी बात' की भूमिका में डॉ. हरिश नवल, तेजेन्द्र शर्मा के संपादकीय लेखन के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हैं "'संपादकीय' पत्रिका, और विशेषकर संपादक का ऐसा दर्पण होते हैं जो संपादक के मन के साथ-साथ उस समाज को प्रतिबिंबित करते हैं जो संपादक जिस रूप में चित्रित करता है। तेजेन्द्र शर्मा जी के संपादकीय अपनी बात के बहाने बहुतों के मन की बात कहते हैं। उनके संपादकीय लेखन की विशिष्ट और निजी शैली है। वे मानो पाठक से बात करते हैं। कभी-कभी उनके मोनोलॉग, डायलॉग में बदल जाते हैं। पाठक मन-ही-मन संवादी हो जाता है। ऐसी विशेषता बहुत कम संपादकों में होती है।

संपादकीय यानि 'अपनी बात' में आप उनके पिता, माँ, बेटी, मित्र आदि के व्यक्तिगत ज़िक्र पढ़ सकते हैं, जिससे पाठक और संपादक के मध्य व्यक्तिगत संबंध बन जाता है।"[32] पाठकों का तेजेन्द्र शर्मा के संपादकियों से यही जुड़ाव; उनके संपादकियों की लोक ग्राह्यता एवं उद्देश्यपरकता को स्पष्ट करता है।

'अपनी बात' संपादकीय संकलन में तेजेन्द्र शर्मा के संपादकियों को कुल आठ उपखण्डों में विभक्त किया गया है। ये 'मुद्दे महत्वपूर्ण', 'कोरोनाः एक अजब विश्वमारी', 'साहित्य', 'गंभीर मुद्दे', 'विदेशी राजनीति', 'यादों के आबशार', 'विविध' नामक उपखण्डों के रूप में कृति में सम्मिलित हैं। ये उपखंड संपादकीय की प्रकृति के अनुसार अलग-अलग शीर्षकों में सम्मिलित है। 'अपनी बात' कृति के संपादकियों का अवलोकन करने पर कहा जा सकता है कि तेजेन्द्र शर्मा की राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पक्षों पर फिर वह चाहे आम आदमी से जुड़े मुद्दे हों अथवा राष्ट्रीय विमर्श का प्रश्न हो; हर-एक विषय पर तेजेन्द्र शर्मा ने बेबाकी से अपनी राय रखी है। तेजेन्द्र शर्मा इस विषय में लिखते हैं "मुद्दे खड़े होते रहे संपादक उन पर गहराई से विचार करता रहा... और पाठक पत्रिका के संपादकीय से जुड़ते गए। जब पाठकों की सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ आती हैं तो अच्छा भी लगता है।"[33] तेजेन्द्र शर्मा जी का संपादक रूप किसी एक विचाराधारा से बंधकर नहीं रहा है। उनके चिंतन में विश्व मानवता है। इसलिए जो मुद्दे मानव से जुड़े हुए हैं वे सभी उन्हें आकर्षित करते हैं और आपका संपादक रूप उन विषयों पर मुखर हो उठता है।

तेजेन्द्र शर्मा के संपादकियों के विशिष्ट्बोध को जाकिया जुबैरी इस प्रकार रेखांकित करती हैं- "हम सब यह देखकर हैरान होते हैं कि एक व्यक्ति को भला इतने विषयों पर इतनी गहन जानकारी कैसे हासिल हो सकती है। सिनेमा हो या खेल जगत, भारतीय राजनीति हो या विदेशी, सामाजिक मुद्दे हों या फिर कानूनी, कोरोना जैसी आफत हो या फिर ब्रिटेन संबंध, यूक्रेन और रूस के युद्ध से जो डर या आतंक महसूस हुआ हो या उससे पैदा हुई आर्थिक मंदी, तेजेन्द्र शर्मा सभी विषयों पर समान अधिकार से लिखते हैं।"[34] वस्तुतः तेजेन्द्र शर्मा की चिंतन दृष्टि मानवता के उद्दाम स्वरूप की पक्षधर है इसके लिए वह विश्व शांति का आहवान करती है तो वहीं राष्ट्रों व सत्ताधीशों की अतिवादिता का प्रबल विरोध भी करती है। वस्तुतः कि तेजेन्द्र शर्मा का संपादक रूप उनकी रचनात्मकता का अचर्चित पक्ष है, जिसमें देश-विदेश की सीमाओं से परे जाकर विश्व चिंतन किया गया है।

तेजेन्द्र शर्मा के समग्र साहित्य का अवलोकन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि आपकी रचना-दृष्टि बहुआयामी है, इसमें साहित्य की कई विधाओं को समृद्ध किया गया है। अस्तु तेजेन्द्र शर्मा के सृजन का अंतर्लोक देश-विदेश की चिंतन दृष्टियों से मिलकर बना है। इसमें देश के आम जनमानस से लेकर प्रवासी भारतीयों के साथ-साथ

विश्व संवेदनाओं की मुखर अभिव्यक्ति हुई है। साहित्यकार तेजेन्द्र शर्मा ने अपने सृजन से हिंदी साहित्य की परिधि व परिवृत्त में विस्तार किया है, उनका लेखन देश-विदेश के सामांतर मानवता का पाठ प्रस्तुत करता है। आपके सृजन का अंतर्लोक विविधताओं से समृद्ध है। यह साहित्य लेखन की अलग-अलग विधाओं में अभिव्यक्त हुआ है। तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी रचनाशीलता में देश-विदेश की बहुआयामी छवियाँ प्रस्तुत की हैं। आपकी रचना-दृष्टि किसी एक विषय या विचारधारा पर ठहरने के बजाए सृजन के नए धरातल चुनती है। इसलिए उनके साहित्य में विषय विविधता का समावेश स्वत: ही हो जाता है। उनके सृजन के अंतर्लोक में विश्व मानवतावाद है। एक साहित्यकार के रूप में तेजेन्द्र शर्मा की हर संभव कोशिश रहती है कि वे सच के साथ खड़े रहें। उनकी यही प्रतिबद्धता उनके सृजन में भी नजर आती है। तेजेन्द्र शर्मा की यही मानवतावादी दृष्टि उन्हें राज्य व राष्ट्रों की सीमाओं से परे करती है। उनका यही वैश्विक चिंतक रूप उन्हें देश-दुनिया के यथार्थ को सामने लाने के लिए प्रेरित करता है। तेजेन्द्र शर्मा की यही प्रेरणा उनके सृजन का मूल बनी है। तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में विश्व संवेदनाओं का निहित होना; उनकी वैश्विक चिंतन दृष्टि का ही परिचायक है। निष्कर्षत: तेजेन्द्र शर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य के वैश्विक प्रतिनिधि हैं, इनका सृजन हिंदी साहित्य का वैश्विक वितान रचता है, जिसमें हिंदी पाठकों को देश-विदेश की अनुभूतियों से साक्षात्कार कराया गया है।

संदर्भ:

1. तेजेन्द्र शर्मा, मैं क्यों लिखता हूँ, स्मृतियों के घेरे, (समग्र कहानियाँ-1) यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-10032, प्रथम संस्करण-2019, पृ. 7-8
2. वही, पृ. 8
3. पियूष द्विवेदी, स्वाभाविकता का रचनाकार, स्मृतियों के घेरे में (समग्र कहानियाँ-2) यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण-2019, पृ. 16
4. पियूष द्विवेदी, स्वाभाविकता का रचनाकार, स्मृतियों के घेरे में (समग्र कहानियाँ-2) यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण-2019, पृ. 16
5. तेजेन्द्र शर्मा, मैं क्यों लिखता हूँ स्मृतियों के घेरे में (समग्र कहानियाँ-2), यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण-2019, पृ. 8

6. वही, पृ. 11
7. पियूष द्विवेदी, स्वाभाविकता का रचनाकार, स्मृतियों के घेरे में (समग्र कहानियाँ–1), यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–2019, पृ. 18
8. तेजेन्द्र शर्मा, मैं और मेरा समय, प्रवासी कथाकार तेजेन्द्र शर्मा, पृ. 23
9. पियूष द्विवेदी, नए विषयों का फलक, नयी जमीन नया आकाश (समग्र कहानियाँ–2), यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–2019, पृ. XIII
10. तेजेन्द्र शर्मा, नया जीवन, नये अनुभव, नये थीम, नई उपलब्धियाँ नयी जमीन नया आकाश (समग्र कहानियाँ–2), यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–2019, पृ. IX
11. पियूष द्विवेदी, नये विषयों की फलक, नयी जमीन नया आकाश (समग्र कहानियाँ–2) यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–2019, पृ. XII
12. पयूष द्विवेदी, नये विषयों की फलक, नयी जमीन नया आकाश (समग्र कहानियाँ–2) यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–2019, पृ. XV
13. हरियश राय, तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ, प्रवासी कथाकार तेजेन्द्र शर्मा, यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–2019, पृ. 66
14. शिवनारायण, तेजेन्द्र शर्मा का रचना-संसार, प्रवासी कथाकार तेजेन्द्र शर्मा, यश पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–2019, पृ. 13
15. डॉ. राधेश्याम सिंह, प्रवासी पद को नया अर्थ देता कथाकार तेजेन्द्र शर्मा, वैश्विक स्वप्नदृष्टा–तेजेन्द्र शर्मा, विकास प्रकाशन, कानपुर–208027, प्रथम संस्करण–2022, पृ. 83
16. डॉ. फतेह सिंह, तेजेन्द्र शर्मा के काव्य में मानवीय चेतना, प्रवासी हिंदी साहित्य और तेजेन्द्र शर्मा, शुभम पब्लिकेशन, कानपुर–208021, प्रथम संस्करण–2019, पृ. 113

17. तेजेन्द्र शर्मा, कविता मेरे लिए विचार पात्र है, टेम्स नदी के तट से, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, थाणे, महाराष्ट्र-401303, प्रथम संस्करण-2020, पृ. 24

18. मधुलता अरोड़ा http://www.abhivyakti-hindi.org/aaj-sirhane/2007/ye-ghas.htm से उद्धृत

19. तेजेन्द्र शर्मा, टेम्स नदी के तट पर, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, थाणे, महाराष्ट्र-401303, प्रथम संस्करण-2020, पृ. 143

20. डॉ. नवीन नन्दवाना, माटी की महक के कवि: तेजेन्द्र शर्मा का रचना संसार, विनय प्रकाशन, कानपुर-208021, प्रथम संस्करण-2018, पृ. 140

21. डॉ. अशोक मर्डे, तेजेन्द्र शर्मा की कविताओं में मानवाधिकार के स्वर, प्रवासी साहित्यकार मूल्यांकन श्रृंखला-1 तेजेन्द्र शर्मा, अनंग प्रकाशन, दिल्ली-110053, प्रथम संस्करण-2017, पृ. 100

22. तेजेन्द्र शर्मा, टेम्स नदी के तट पर, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, थाणे, महाराष्ट्र-401303, प्रथम संस्करण-2020, पृ. 162

23. वही, पृ. 166

24. वही, पृ. 30

25. डॉ. कामना पंड्या, तेजेन्द्र शर्मा की कविताओं की अंर्तवस्तु, भारतेतर हिंदी साहित्य और तेजेन्द्र शर्मा, शुभम पब्लिकेशन, कानपुर-208021, प्रथम संस्करण-2019, पृ. 85

26. वही, पृ. 121

27. तेजेन्द्र शर्मा, टेम्स नदी के तट पर, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, थाणे, महाराष्ट्र-401303, प्रथम संस्करण-2020, पृ. 40

28. वही, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, थाणे, महाराष्ट्र-401303, प्रथम संस्करण-2020, पृ. 44

29. तेजेन्द्र शर्मा, टेम्स नदी के तट पर, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, थाणे, महाराष्ट्र-401303, प्रथम संस्करण-2020, पृ. 45

30. डॉ. कामना पंडया, तेजेन्द्र शर्मा की कविताओं की अंर्तवस्तु, भारतेतर हिंदी साहित्य और तेजेन्द्र शर्मा, शुभम पब्लिकेशन, कानपुर-208021, प्रथम संस्करण-2019, पृ. 85

31. शिवानारायण एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–2019, पृ. 13

32. डॉ. हरीश नवल, अपनी बात: एक प्रेरक ज्ञानकेश रूप, अपनी बात, खंड–1, आद्‌विक पब्लिकेशन प्रा. लि., पडपड़गंज दिल्ली–110092, प्रथम संस्करण–2022, पृ. 12

33. तेजेन्द्र शर्मा, अपनी बात, खंड–1, आद्‌विक पब्लिकेशन प्रा.लि. पडपड़गंज, दिल्ली–110092, प्रथम संस्करण–2022, पृ. 18

34. जाकिया जुबैरी, एक कहानीकार के संपादकीय, अपनी बात, खंड–1, आद्‌विक पब्लिकेशन प्रा. लि. पडपड़गंज दिल्ली–110092, प्रथम संस्करण–2022, पृ. 8–9

❑❑

21वीं सदी के प्रमुख हिंदी उपन्यासों में चित्रित मजदूर जीवन

मनोज कुमार / सुभाष शर्मा

सारः

आधुनिकता के इस दौर में विकासवाद के नाम पर समाज में वर्ग भेद का विस्तार हुआ है। समाज के उच्च्चवर्गीय समुदाय ने निम्न वर्ग के व्यक्तियों को पशुओं की श्रेणी में रखकर उनके साथ पशुतुल्य व्यवहार किया है चूंकि वर्ग भेद के कारण ही सदियों से समाज का श्रमजीवी वर्ग बेरोजगारी, स्वास्थ्य, पलायन, राजनीति, बेघर आदि समस्याओं में उलझा पड़ा है साथ ही भारत का श्रमिक वर्ग जितना अधिक ईमानदार और मासूम है, उतना ही अधिक मेहनती भी है शायद इसीलिए समाज की सभी व्यवस्थाएँ (धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि) उनका शोषण कर रही हैं। इन्हीं सब कारणों से युगों-युगों से भारत का मजदूर वर्ग गरीब है। साथ ही सामाजिक कुरीतियाँ, बेरोजगारी, स्वास्थ्य, राजनीति, गरीबी, भुखमरी और पशुतुल्य जीवन के कारण ही भारत का मजदूर वर्ग पलायन होने के लिए विवश भी हुआ है परंतु पलायनता के बाद भी उनके जीवन में कुछ खास सुधार नहीं आया। अतः इस शोध आलेख में हम हिंदी उपन्यासों के माध्यम से मजदूर वर्ग की समस्याओं का अध्ययन करते हुए उनकी समस्याओं के समाधान पर विचार करेंगे।

मुख्य बिंदुः श्रमिक जीवन, नौकर वर्ग, मजदूर वर्ग, मिल मजदूर, खदान मजदूर, खेतिहर मजदूर, गिरमिटिया मजदूर, आदिवासी मजदूर, शहरी मजदूर, रिक्शाचालक, खाँटी मजदूर, मजदूर यूनियन, उच्च वर्ग, निम्न वर्ग, पूँजीपति वर्ग, कार्ल मार्क्स आदि।

प्रस्तावनाः समाज में पूँजी बहुत ही उपयोगी और महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है चूंकि समाज में पूँजी को ही सर्वोपरि समझा जाता है इसलिए समाज में वर्ग-वाद जैसी समस्या उत्पन्न हुई है। वर्गवादी समाज में एक तरफ उच्च वर्ग अर्थात् पूँजीपति वर्ग है तो दूसरी तरफ निम्न वर्ग अर्थात् श्रमजीवी वर्ग है। क्रूरता के कारण बुर्जुआ वर्ग शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, तो सरल एवं मेहनती स्वभाव के कारण मजदूर वर्ग को शोषित वर्ग की

श्रेणी में रखा जाता है फलतः श्रमजीवियों की मासूमियत के कारण धूर्त और चालाक बुर्जुआ वर्ग मशीनीकरण से लेकर समाज के विकास के नाम तक उनका शोषण कर रहा है। भारत देश में औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने जितना शोषण किया है, उतना शोषण अंग्रेजों के कार्यकाल में भी नहीं हुआ था। इस बात की पुष्टि करते हुए "सुमित सरकार ने कहा है– 'भारत का वास्तविक शत्रु अंग्रेजी राज नहीं है अपितु समग्र औद्योगिक सभ्यता है। गांधी जी की परिकल्पना उस प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है जो आधुनिकीकरण की गहरी बेगानगी उत्पन्न करने वाले प्रभावों, विशेषकर औपनिवेशिक परिस्थितियों ने उत्पन्न की थी।"[1] गाँधी जैसे महान नेता भी मशीनीकरण के घोर विरोधी थे क्योंकि उन्हें पता था कि मशीनीकरण और औद्योगीकरण की वजह से समाज में बेरोजगारी जैसी समस्या उत्पन्न होगी और समाज का सबसे शक्तिशाली वर्ग (युवा वर्ग) उसकी चपेट में आ जाएगा किंतु आधुनिक समाज ने अपनी सुविधा और सहजता के लिए मशीनीकरण को न केवल स्वीकार किया बल्कि उसे तेजी से विकसित भी किया है। आज हमें तकनीक के संदर्भ में शिक्षा दी जाती है कि तकनीक के बिना आज कोई भी कार्य संभव नहीं है लेकिन गौर करने वाली बात यह है कि प्राचीन कालीन सभ्यता, तकनीक के बिना भी कहीं अधिक सक्षम, व्यवस्थित और उपयोगी थी। उदाहरण के तौर पर हम नायाब ताजमहल को देख सकते हैं। ताजमहल मशीनों के बिना बनाया गया महल है। अतः वह प्राचीन कला को प्रदर्शित करने का जीवंत उदाहरण है। उसकी खूबसूरती के कारण ही शाहजहाँ ने उसे बनाने वाले मजदूरों के हाथ कलम कर दिये थे क्योंकि शाहजहाँ वैसी दूसरी इमारत नहीं चाहता था। परिणामस्वरूप मजदूरों के हाथ कलम करने वाली घटना उसके क्रूर शोषण का सटीक उदाहरण है। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि हर युग हर काल में श्रमजीवी वर्ग प्रताड़ित और शोषित हुआ है।

प्राचीनकाल में भारतीय मजदूरों को पशुओं की भाँति बंधक बनाकर प्रताड़ित किया जाता था। इन्हीं सब कारणों से मजदूर यूनियन का गठन होना शुरू हो गया। भारत के बुद्धिजीवी, समाज सेवक और राजनेताओं ने भारत के श्रमजीवियों के संरक्षण के लिए अपना बहुमूल्य योगदान दिया है, इन महान विभूतियों में राजनीतिज्ञ आचार्य कृपलानी का नाम भी आता है। "आचार्य कृपलानी ने किसान–मजदूर पार्टी बनाई।"[2] जिससे किसानों और मजदूरों की हितों की रक्षा की जा सके। समाज की व्यवस्था का अध्ययन करें तो हम पाएँगे कि समाज में सबसे नीचे मजदूर वर्ग है और समाज की यह व्यवस्था वर्ग के आधार पर गढ़ी गयी है। भारत के प्राचीन समय में वर्ण व्यवस्था का चलन था। जहाँ दलित, आदिवासी, चूहड़ और दमित समुदाय को सबसे निम्न श्रेणी में स्थान प्राप्त था। आधुनिकीकरण के कारण वही वर्ण व्यवस्था अब धीरे–धीरे वर्ग व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी है। अतः ऐसा कहना गलत नहीं होगा कि भारत का जो समुदाय निम्न वर्ण में था, वही अब निम्न वर्ग के रूप

में तबदील हो गया है। "श्रमिकों की केस-स्टडी यानी व्यक्ति या परिवार-आधारित अध्ययन इस त्रासद यथार्थ को भी उद्‌घाटित करता है कि इस अमानवीय प्रथा के शिकार मूलतः दलित आदिवासी और पिछड़े वर्ग के हैं।"[3]

हिंदी साहित्य भारत का एक अभिन्न अंग है इसलिए हिंदी साहित्य में भारतीय समाज का उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम हिंदी साहित्य मजदूर वर्ग की समस्याओं से अछूता और अनजान था लेकिन भारतेंदु युग (आधुनिक युग) से हिंदी साहित्य में समाज की समस्याओं को स्थान मिला। तब से साहित्य में आदिवासी, दलित, स्त्री, किन्नर और मजदूर वर्ग के जीवन की समस्या दिखाई देने लगी। जैसा कि आलोचक बच्चन सिंह जी भी कहते हैं "124 '26 तक कविताओं में अपने ढंग से वर्ग-संघर्ष है।"[4] यद्यपि 19वीं सदी के बाद से ही हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में मजदूर वर्ग को स्थान मिला। साथ ही साहित्यकार से लेकर सामान्य व्यक्ति तक सभी मजदूर जीवन की त्रासद स्थिति पर अपनी राय प्रकट करने लगे हैं। चूंकि साहित्यकार कल्पना एवं यथार्थ जीवन के अंश को जोड़कर श्रमजीवी वर्ग के दुःख तथा पीड़ा को और अधिक रोचक बनाकर समाज तक पहुँचाता है। फलतः भले ही साहित्य में कल्पना का अंश होता हो लेकिन वह कल्पना भी यथार्थ जैसी ही अनुभूति प्रकट करती है।

मनुष्य क्रियाशील प्राणी है इसलिए वह अपनी जीविका और विकास के कारण जगह-जगह स्थानांतरित होता रहता है। उसकी इसी क्रिया के कारण वह जीवित एवं विकसित भी है। व्यक्ति के स्थान परिवर्तन होने के कई कारण है। जैसे बेरोजगारी, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि। मनुष्य कभी खुश होकर, तो कभी दुःखी होकर स्थानांतरण करता है। अगर हम श्रमजीवियों की बात करें तो हम पाएँगे कि सर्वप्रथम श्रमजीवी वर्ग ने दुःखी होकर ही स्थानांतरण किया होगा। मजदूरों के पलायन होने वाली स्थिति को स्पष्ट करते हुए, 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में लेखिका लिखती हैं कि "तांबे की खदानों में काम करने के लिए ही तो वो आए थे मरंग गोड़ा।"[5] फलतः श्रमजीवी वर्ग रोजगार की तलाश में अपने मूल स्थान से पलायन कर रहा है। वह अपना मूल स्थान छोड़कर शहर में एवं फैक्ट्रियों के निकट रहने के लिए भी लाचार है। वहीं जब मिल भी बंद हो जाती है तो करखनदार वर्ग बदहाली के कारण उस स्थान को भी छोड़ने के लिए विवश हो जाता है। मिल के बंद हो जाने के उपरांत कामगार वर्ग अपनी जीविकोपार्जन चलाने के लिए विभिन्न प्रकार के रोजगार करने के लिए लाचार हो जाते हैं। इसका जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लेखक एम.एम. चन्द्रा 'प्रोस्तोर उपन्यास में लिखते हैं कि "मिल बंद हो चुकी थी और अधिकतर मिल मजदूर शहरों में रिक्शा चलाने, दिहाड़ी मजदूरी और खेती मजदूरी के लिए जाते थे।"[6] साथ ही इस समस्या को स्पष्ट करते हुए लेखिका मधु कांकरिया भी 'पत्ताखोर' उपन्यास में लिखती हैं कि "पंचन आदिवासी था। पंचम असुर। उसकी कई पीढ़ियों ने हेमोलाइट पत्थर से लोहा

बनाने का खानदानी काम किया था, इसके अलावा वे बाँस एवं डलिया बनाने जैसे छोटे-मोटे काम वगैरह भी करते थे। यद्यपि जिस विधि से वे लोहा बनाते थे उसकी जंग प्रतिरोधक शक्ति टिस्को के बने लोहे से भी अधिक थी, फिर भी बाजार में सस्ता लोहा मिलने के चलते उसका बना लोहा बिकना बंद हो गया था।... और वह शिल्पी से आधा मजदूर और फिर खाँटी मजदूर बनता हुआ इस परदेश में रिक्शावाला बन गया था।"[7] व्यक्ति की सबसे बड़ी समस्या भूख की समस्या है और वह अपनी इस समस्या से निजात पाने के लिए दर-दर भटक रहा है। कारखाने बंद होने के बाद लेबर वर्ग अपनी बेरोजगारी को दूर करने के लिए और अपने पेट की क्षुधा मिटाने के लिए हर प्रकार के कामों में अपनी रुचि प्रकट करने के लिए विवश हो गया है। परिणामस्वरूप फैक्टरी वर्कर हर प्रकार के कार्य को करने के लिए बाध्य हो रहा है।

आज का मानव सामाजिक उत्थान के नाम पर और अधिक क्रूर होता जा रहा है। मानव की यह निष्ठुरता समाज को उत्थान की ओर नहीं बल्कि पतन की ओर ले जा रही है। इसी निर्दयी स्वभाव के कारण ही समाज में वर्ग भेद का जन्म हुआ है। वर्गवादी समाज में जहाँ क्रूर और अत्याचारी लोग पूँजीपति की श्रेणी में गिने जाने लगे हैं, वहीं सहज और सरल लोग मेहनतकश वर्ग की श्रेणी में आ गये हैं। साधारण होने के कारण मजदूरों का रहन-सहन भी साधारण होता है। इसी साधारण स्वभाव और निर्धनता के कारण ही समाज में उन्हें दरिद्र की कोटि में रखा जाता है। "ये दरिद्र जरूर हैं पर दरिद्रता इनके भीतर नहीं है। भीतर से यह भरे पूरे हैं। ये मनुष्य होने का अर्थ जीवन और जीवन राग की साझेदारी में तलाशते हैं।"[8] अतः इस बात से यह पुष्टि हो जाती है कि मजदूर प्रायः आर्थिक रूप से दरिद्र और पिछड़े हैं लेकिन मानवीय स्वभाव में ये पूँजीपतियों से कहीं गुना आगे हैं। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास का पात्र जाम्बीर भी एक श्रमिक है। वह स्वभाव से सरल और साधारण है। वह "पहाड़ी की खड़ी चढ़ाई को अनदेखा कर सुबह से शाम तक भारी-भारी सामान ढोता। बदले में जो भी मजदूरी मिल जाती, खुशी-खुशी स्वीकार कर लेता। नमक भात खाने लायक पैसे तो मिल ही रहे थे। बिल्कुल संतुष्ट था वह।"[9] जहाँ संतोष और आत्म संतुष्टि मजदूर वर्ग का मूल गुण है। वहीं शोषण एवं प्रताड़ना पूँजीपति वर्ग का मूल स्वभाव है। आधुनिक समाज में श्रमजीवी वर्ग की यही सरलता उसके शोषित तथा प्रताड़ित होने का मूल कारण है। आज के समय में मजदूरी करने के बाद "मजदूर वर्ग जो राशि-राशि उपज पैदा करता है, उसमें से उसे केवल एक हिस्सा ही वापस मिलता है।"[10] इससे यह सिद्ध होता है कि मजदूर वर्ग द्वारा उपन और लाभ का निन्यानबे प्रतिशत हिस्सा अभिजात्य वर्ग स्वयं रख लेता है और वह मजदूरों को मजदूरी के रूप में केवल मुनाफे का एक भाग ही देता है। इतनी सब क्रिया और प्रतिक्रिया के बाद भी श्रमजीवी वर्ग हर जगह खुद को ही दोषी समझता है और अपने दोष तथा पाप की क्षमा-याचना के लिए ईश्वर के दरबार में स्वयं को अर्पित कर

देता है। मजदूरों के इस स्वभाव को स्पष्ट करते हुए लेखक 'प्रोस्तोर' उपन्यास में लिखते हैं कि "मंदिर में मजदूर अपने कर्मों की क्षमा याचना करते हैं। स्वयं को दोषी ठहराकर भगवान को कुछ-न-कुछ अर्पित करते हैं।"[11] वस्तुत: आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण मजदूर वर्ग का आत्मबल क्षीण होता जाता है और इसलिए वह ईश्वर की शरण में जाकर स्वयं को सांत्वना देता है। आर्थिक अभाव के कारण वे "एक सूती बंडी, कुछ ताँबे के सिक्कों और रहने की एक अँधेरी कोठरी की शक्ल अख्तियार कर लेते हैं।"[12] आर्थिक बेहाली के बाद भी श्रमजीवी वर्ग समाज में किसी से सहानुभूति नहीं चाहता क्योंकि "सच्चा श्रमजीवी सहानुभूति को अपमान समझता है।"[13]

गरीबी, अभाव और बेज़ार परिस्थिति के कारण मजदूर वर्ग शारीरिक दुर्बलता की मार भी झेलता है। वह हमेशा हमें शारीरिक रूप से कृशकाय ही दिखायी देता है। वास्तविक जीवन से लेकर फिल्मों तक का सूक्ष्म विवेचन करने पर भारतीय मजदूर वर्ग की यह समस्या स्पष्ट हो जाती है। उदाहरण स्वरूप अगर हम फिल्मों में भारतीय मजदूरों के रूप को देखें तो हम पाएँगे कि फिल्मों में दिखाया गया भारतीय श्रमजीवी अर्धनग्न, शारीरिक रूप से क्षीण और हताश रहता है। फिल्मों में चित्रित मजदूरों की यह दशा उनके यथार्थ जीवन की परिस्थिति को उद्घाटित करती है। मजदूर वर्ग स्वाभिमानी होने के कारण लोगों से सहानुभूति की उम्मीद नहीं करता है बल्कि सद्-व्यवहार, समानता और सदाचार की उम्मीद करता है। वह चाहता है कि समाज के अन्य वर्ग या अन्य लोगों की तरह उसे भी सम्मान प्राप्त हो। मानसिक विभक्ति के कारण आज भी मजदूर वर्ग सम्मान के दर्जे से वंचित है इसलिए आज भी घरों में काम करने वाले खुंदकारों को 'रे' 'ते' जैसे संबोधन दिये जाते हैं। ऐसे शब्दों के कारण उनके स्वभिमान को आहत पहुँचती है। परिणामत: वे अपने आपको कमजोर और पिछड़ा स्वीकार कर लेते हैं। साथ ही वे यह भी मान लेते हैं कि उनका वर्ग समाज से कटा हुआ वर्ग है। जहाँ एक ओर मजदूर वर्ग समाजिक रूप से प्रताड़ित होकर मन और आत्मा से कमजोर हो रहा है। वहीं दूसरी ओर मिलों में काम करने और वहाँ के प्रदूषित वातावरण की वजह से शारीरिक रूप से जर्जर भी हो रहा है। "मिल से निकलने वाले मजदूरों के नाक, कान, चेहरे और सर के बालों पर रुई के महीन कण चिपके रहते हैं।"[14] साथ ही "उनके खांसने की आवाज में रुदन ज्यादा है। न रुकने वाली इस दमघोटू खांसी का अभी तक कोई इलाज नहीं था। गले तक पहुँच चुकी रुई को साफ करने के लिये धागामिल के गेट पर बनी कैंटीन से गुड़ या बेसन के लड्डू खाकर काम चला लिया जाता है।"[15] इस तरह मानसिक और शारीरिक दोनों स्तरों पर मजदूर वर्ग कमजोर हो रहा है। पूँजीपतियों का उद्देश्य केवल पैसे कमाना है इसलिए वह कभी भी मजदूरों के अच्छे स्वास्थ्य और सेहत की बात नहीं करते और न ही कभी उनके स्वास्थ्य के बारे में विचार ही करते हैं। मजदूर वर्ग की स्वास्थ्य समस्या को स्पष्ट करते हुए कथाकार 'प्रोस्तोर' में लिखते हैं कि "मिल मालिक ने पहली

बार धागामिल के मजदूरों की मेडिकल जाँच कराई। उसी रिपोर्ट में पता चला कि न सिर्फ मिल में काम करने वाले मजदूर खांसी, फेफड़े की बीमारी और दमे की चपेट हैं बल्कि उस मिल की जद में आने वाला प्रत्येक नागरिक दमे जैसी बीमारी का शिकार है।"[16] वस्तुतः प्रदूषित वातावरण के कारण करखनदार वर्ग के स्वास्थ्य में गिरावट होती जा रही है। वे दमा और कैंसर जैसी लाइलाज बीमारियों की गिरफ्त में आते जा रहे हैं। मिल मालिक चाहे तो अपने निन्यानबे प्रतिशत लाभ के कुछ हिस्सों का इस्तेमाल, वह अपने यहाँ काम करने वाले मजदूरों के स्वास्थ्य सुविधा के लिए कर सकता है किंतु लालच और क्रूरता के कारण वह ऐसा नहीं कर पाते।

आधुनिक परिवेश के इस बाजारवादी व्यवस्था के अनुरूप "मजदूर मजदूरी के बदले में पूँजीपति के हाथों अपना श्रम बेचता है।"[17] किंतु दंभी अभिजात्य वर्ग हमेशा उनका शोषण कर उन्हें कमजोर बनाने की चेष्टा करता है। पूँजीपति यह भूल जाता है कि जिस प्रकार वह एक मनुष्य है, ठीक उसी प्रकार श्रमिक भी एक मनुष्य है। जिस तरह उद्योगपति वर्ग अपनी जीविका के लिए फैक्ट्री और मिल की स्थापना करता है, ठीक उसी तरह कामगार वर्ग भी अपने श्रम के बल पर अपना जीविकोपार्जन करता है। उसे अपनी छोटी से छोटी जरूरतों को पूरी करने के लिए अपने शरीर की भी आहुति देनी पड़ती है। इसका जीवंत प्रसंग प्रस्तुत करते हुए लेखिका 'पत्ताखोर' उपन्यास में लिखती हैं कि "टीन बनाने वाली फैक्ट्री में काम करने वाला बद्री ने अपनी लड़की को ब्याहने के लिए मुआवजे के लालच में चलती मशीन के नीचे अपना अंगूठा दबाया था। पाँच वर्ष पहले जदू ने अपना एक गुर्दा बीस हजार रुपए में बेच दिया था, जिससे खून से चलने वाली इस काल-गाड़ी के बदले में अपना ऑटो खरीद सके।"[18] तात्पर्यतः मजदूरों को अपनी छोटी-छोटी ख्वाहिशें पूरी करने के लिए बड़ी-बड़ी कुर्बानी देनी पड़ती है लेकिन इन सबके बावजूद भी अभिजात्य वर्ग को कोई फर्क नहीं पड़ता और उनके द्वारा श्रमजीवियों के शोषण का सिलसिला चलता रहता है। खदान में काम करने वाले मजदूरों की अवस्था अधिक दयनीय है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास का पात्र 'सगेन' अपनी अवस्था बयान करते हुए कहता है कि "जमीन के नीचे से निकाले गये पत्थरों को बड़ी-बड़ी मशीनों के द्वारा चूर करके फिर विभिन्न प्रकार के रसायनों की मदद से धोकर फालतू कचरों से अलग करने के बाद मशीन की मदद से सुखाकर पीली धूल में बदल दिया जाता है। इन्हीं धूलों को तो कई-कई मजदूरों के साथ मिलकर बड़े-बड़े ड्रमों में भरना पड़ता है मुझे। भरते वक्त ड्रमों को हिलाते रहने को कहा जाता है, ताकि उनमें ज्यादा से ज्यादा धूल अट सके। तो यही सब करते समय पीली धूल उड़ उड़कर आँख, नाक, कान, मुँह में घुस जाती है।"[19] इसलिए खदान में काम करने वाले मजदूरों का स्वास्थ्य धीर-धीरे कमजोर होता जा रहा है। जिसकी वजह से वे अस्वस्थ और कुरूपता का शिकार होकर समय के पहले ही वृद्ध हो जाते हैं। कभी-कभी तो खदान में

काम करते समय मजदूरों की मृत्यु भी हो जाती है। यशोभूमि अखबार के अनुसार "छत्तीसगढ़ के अनूपपुर जिले के एक खदान हादसे में 7 लोगों की मौत हो गई थी। घटना 26 जनवरी की है।"[20] यह वाकया कोयला खदान का है। अपनी जीविका चलाने के लिए कोयला मजदूरों को खदान के अंदर जाकर काम करना पड़ता है। कोयला खदानों में प्राय: ऑक्सीजन का अभाव होता है। ऑक्सीजन की कमी और दम घुटने के कारण खदान मजदूर काल का ग्रास बन जाते हैं। इस तरह हर रोज मजदूरों की मृत्यु की खबर अखबारों में आती रहती है। फलत: मजदूर वर्ग कभी कोयला खदान, कभी मिल, कभी इमारत तो कभी खदान में गिरकर मौत का शिकार हो रहे हैं।

वैश्विकरण के कारण पूरा विश्व बाजार के रूप में परिणत हो गया है। इस बाजारवादी परंपरा में मजदूर और नौकर वर्ग बेरोजगारी का शिकार हो रहे हैं परंतु सभी देश की सरकारें इसकी परवाह न करते हुए, उन्मादी होकर विकासवाद की ओर तीव्र गति से दौड़ रही हैं। इस तरह विकासवाद के नाम पर सरकार ने गरीबों और अमीरों के बीच की खाई को भी बढ़ा दिया है। पहले श्रमजीवी को एक दिन की भी मजदूरी दी जाती थी किंतु आज के इस दौर में बेरोजगारी जैसी महामारी के कारण सभी छोटी-बड़ी कंपनियाँ मजदूर को एक दिन के ट्रायल बेस पर ही निपटा देती है। जिसके कारण उद्योगपतियों के मजदूरी की कुछ लागत बच जाती है। इस समस्या को स्पष्ट करते हुए कथाकार एम. एम. चन्द्रा 'प्रोस्तोर' उपन्यास में लिखते हैं कि "यहाँ रोज ट्रायल करने लोग आते हैं। एक दिन काम करके चले जाते हैं। मेरा तो फ्री में काम हो रहा है। यदि तुझे करना है तो अकेले ही करना पड़ेगा।"[21] अर्थात् अगर मिल मालिक एक दिन के ट्रायल के लिए एक मजदूर का इस्तेमाल करता है और वही उसने पूरे माह अगर कुल तीस (30) मजदूरों का ट्रायल भी किया तो उसने अपनी कंपनी में लगने वाली मजदूरी में से कुल एक माह की मजदूरी बचा ली। इस तरह अभिजात्य वर्ग विभिन्न तरीकों से मजदूर वर्ग का शोषण कर रहा है। व्यक्ति अपने वेतन में बढ़ोतरी होने पर अधिक खर्च का विचार कर सकता है लेकिन अगर उसके वेतन में वृद्धि ही नहीं हुई तो वह ज्यादा खर्च की कल्पना कैसे करें? और इसी वजह से "मजदूर अपनी आय जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं पर ही खर्च करते हैं, और ऐसा उन्हें करना पड़ता है।"[22]

विकासवाद के नाम पर उद्योगपति वर्ग सरकार से साठ-गाँठ कर गाँव, जंगल जैसे स्थानों पर स्थित लोगों को बेघर कर उनके स्थानों पर अपना आधिपत्य जमा रहा है। साथ ही उन्हें अपने कंपनियों में काम करने से भी वंचित कर रहा है। इस समस्या का सबीव चित्रण महुआ माजी कृत 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में हुआ है। उपन्यास में लेखिका लिखती हैं कि "जिनकी जमीन पर कंपनी फल-फूल रही थी, जिनके घर और खेत उजाड़ दिए गए थे कंपनी का टेलिग डेम बनाते समय खदान को विस्तार देते समय मिल बनाते

समय... और वे बिल्कुल बेरोजगार आश्रयहीन हो गये थे।"[23] पूँजीपति वर्ग के अत्याचारों का दंश निम्न वर्ग के मजदूरों को झेलना पड़ता है। वे निम्न वर्ग की जमीनों को भी अपनाकर उन्हें बेघर बना रहे हैं। समाज में वर्ग-भेद के कारण ही श्रमिकों को विभिन्न प्रकार की सामाजिक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ रहा है। 21वीं सदी के इस दौर में भी बड़े पैमाने पर गैर-कानूनी तरीके से मजदूरों का क्रय-विक्रय हो रहा है। समाज के प्रतिष्ठित लोग श्रमजीवी वर्ग को पशुतुल्य समझते हैं, इसी वजह से वे उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार भी करते हैं। अंग्रेज अपने शासन काल में विभिन्न देशों से मनुष्यों को कैद कर कुली मजदूर के रूप में स्थानांतरित करते थे। अश्विनी कुमार पंकज द्वारा विरचित उपन्यास 'माटी-माटी अरकाटी' में बंधुआ गिरमिटिया मजदूर की समस्या को उकेरा गया है। उपन्यास का नायक कोंता स्वयं एक गिरमिटिया मजदूर है। बंधुआपन की त्रासद स्थिति, अस्वतंत्रता पूर्ण जीवन, अमानवता जैसी समस्याएँ गिरमिटिया मजदूर के जीवन की सामान्य समस्या है। गिरमिटिया मजदूर की परिस्थिति को स्पष्ट करने के लिए अधिनी कुमार पंकज ने इस उपन्यास में पात्र डॉक्टर और जहाज के कैप्टन के संवाद को केंद्र में रखकर प्रवासी मजदूरों की समस्याओं को उल्लेखित किया है। उपन्यास में डॉक्टर जहाज के कैप्टन से कहता है कि "सबके सब जंगली हैं। ख्याल रखने से भी कुछ नहीं होगा।" डॉक्टर के चेहरे पर घृणा थी। विद्रूपता से मुस्कुराते हुए बोला। 'समुद्र को भी तो अपना हिस्सा चाहिए। कैप्टन को बुरा लगा। उसने कहा, 'एक भी कुली का मरना कंपनी के लिए ठीक नहीं है। एक कुली की मौत मतलब 100 रुपये का सीधा घाटा।"[24] अतः गिरमिटिया मजदूर की समस्या भले ही अंग्रेजों के शासन काल में रही हो लेकिन आज स्वतंत्रता के बाद भी भारत में मजदूरों की हू-ब-हू वैसी ही समस्या विद्यमान है। आज बड़े स्तर पर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों से गरीब और बेबस व्यक्तियों को बंधक बनाकर विदेशों में निर्यात किया जाता है। इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिकता के इस दौर में अभिजात्य वर्ग आदिम सभ्यता को अपनाता जा रहा है, और साथ ही वह मजदूरों को इंसानों की श्रेणी से भिन्न समझता है। इसका जीवंत उदाहरण 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है। उपन्यास में लेखिका लिखती हैं कि "कॉरपोरेशन द्वारा नियुक्त आदिवासी मजदूरों को भी सही मजदूरी नहीं दी जाती थी। अनेक बार मजदूरी के रूप में दिए गए गेहूँ सड़े हुए होते थे। कॉरपोरेशन के अधिकारी तथा कर्मचारियों द्वारा मजदूरों तथा उनकी औरतों के साथ बदसलूकी की जाती थी।"[25]

मजदूर वर्ग का समाज बहुत ही वृहत है। वृहत होने के साथ-साथ वे असंगठित और अशिक्षित है इसीलिए उद्योगपति बड़ी सहजता से मजदूरों का शोषण कर रहा है। उनके असंगठित होने का उदाहरण 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में भी चित्रित है। उपन्यास में लेखिका लिखती हैं कि कंपनी वालों को जल्द से जल्द तीसरे टेलिंग डैम का निर्माण करना था। स्थानीय मजदूरों द्वारा असहयोग किये जाने पर उन्होंने बाहरी मजदूरों को लाकर

भारी संख्या में पुलिस बल की मदद से काम करवाना आरंभ कर दिया।"[26] 19वीं शताब्दी में ही मजदूर वर्ग को एक जुट होने के लिए कार्ल मार्क्स ने उन्हें संगठित होने का मंत्र दे दिया था किंतु आज भी वे असंगठित है। यद्यपि संगठित होने के बाद भी लालची और ऐयाश यूनियन नेताओं की वजह से श्रमिक वर्ग मिल मालिक का शिकार हो रहे हैं। उपन्यास 'प्रोस्तोर' में एम. एम. चन्द्रा लिखते हैं कि "मिल मालिक ने मजदूर यूनियनों के कुछ नेताओं को खरीद लिया, उनका आपस में झगड़ा करा दिया। धागामिल समर्थक यूनियन और मजदूर समर्थक यूनियन आपस में भिड़ गये।"[27] तात्पर्यतः संगठित होने के बावजूद भी मजदूर वर्ग शोषण और प्रताड़ना का शिकार हो रहा है। आधुनिकता के इस दौर में जहाँ मिल मालिक मजदूर वर्ग को अपना गुलाम बनाकर रखना चाहता है, वहीं मजदूर वर्ग स्वतंत्र और उन्मुक्त जीवन जीने के लिए झटपटा रहा है। पूँजीपति वर्ग कितने भी यथासाध्य प्रयत्न कर ले वह मजदूर वर्ग को पूर्णतः गुलाम नहीं बना सकता। क्योंकि "श्रम का मूल्य केवल श्रम से ही मापा जा सकता है।"[28] अर्थात् उद्योगपति जब तक श्रमिक वर्ग के श्रम की कीमत नहीं समझेगा, तब तक वह मजूर वर्ग की वास्तविकता से अनभिज्ञ रहेगा। अतः जब अभिजात्य वर्ग मजदूरों के मजदूरी की कीमत समझ जाएगा, तब वह उनका सम्मान करने लगेगा।

निष्कर्षः समाज में मजदूर वर्ग को कामगार, लेबर, श्रमजीवी आदि बहुत से नामों से संज्ञान्वित किया जाता है किंतु इतनी सब संज्ञाओं के बाद भी श्रमिकों की समस्याओं में कोई खास सुधार नहीं हुआ है। समाज में प्रायः दो किस्म के मजदूर पाये जाते हैं; उच्च श्रेणी मजदूर और निम्न श्रेणी मजदूर। उच्च श्रेणी के मजदूरों को नौकर वर्ग एवं निम्न श्रेणी के मजदूरों को श्रमजीवी वर्ग की श्रेणी में विभक्त किया जाता है। उच्च श्रेणी मजदूर स्थाई रोजगार के कारण उचित जीवनयापन करने के लिए सक्षम है, वहीं निम्न श्रेणी मजदूर अस्थाई रोजगार के कारण जीवन की मूलभूत जरूरतों को पूरी करने लिए संघर्षरत है। फलतः भारत का निम्न श्रमजीवी वर्ग सरकारी पहचान पत्र से वंचित होने के कारण सरकारी योजनाओं और सुविधाओं से भी वंचित है। इस तरह सरकार कागजों में नामांकित होने के कारण आज उच्च श्रेणी का मजदूर सरकारी और गैर सरकारी सभी सुविधाओं का उपभोग कर रहा है। वहीं निम्न श्रेणी का मजदूर रोटी, कपड़ा और मकान के लिए संघर्ष कर रहा है। कार्ल मार्क्स के वर्ग संगठन के बाद कॉरपोरेट मजदूरों (उच्च श्रेणी) को सहयोग और सहायता तो मिली किंतु निम्न श्रेणी का मजदूर इन सबसे वंचित रह गया इसलिए आज भी निम्न श्रेणी का खाँटी मजदूर प्रताड़ित और शोषित है। चूंकि विश्व भर में समाज में समानता, सद्भाव को जीवित रखने के लिए और समाज की समस्याओं को खत्म करने के लिए विभिन्न प्रकार के शोध हो रहे हैं। फलतस्वरूप दुनिया में जितने भी अनुसंधान हो रहे हैं एवं जितने भी सिद्धांतों का उदय हो रहा है। उन सबका उद्देश्य केवल-व-केवल मनुष्य

समुदाय का उद्धार और मनुष्यता की रक्षा करना है। अतः हम कह सकते हैं कि समाज में जब तक उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की खाई समाप्त नहीं होगी, तब तक समाज का संपूर्ण विकास होना संभव नहीं है इसलिए समाज को विकसित करने के लिए अभिजात्य वर्ग और मजदूर वर्ग के बीच स्थापित संघर्ष को गतिमान करने के साथ-साथ उनके बीच सामंजस्य भी बनाये रखना होगा।

संदर्भः

1. बच्चन सिंह, निराला का काव्य (औपनिवेशिक और उत्तर औपनिवेशिक समय); आधार प्रकाशन, पंचकूला हरियाणाः प्रथम संस्करण-2005, पृ. 22
2. वहीं से, पृ. 54
3. रामशरण जोशीः आदमी, बेल और सपने, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्लीः दूसरा संस्करण-2009, 912
4. बच्चन सिंह, निराला का काव्य (औपनिवेशिक और उत्तर औपनिवेशिक समय), आधार प्रकाशन, पंचकूला हरियाणा, प्रथम संस्करण-2005, पृ. 51
5. महुआ माजी मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2012, पृ. 18
6. एम. एम. चन्द्रा; प्रोस्तोर, डायमंड पॉकेट बुक, नई दिल्लीः संस्करण 2018; पृ. 81
7. मधु कांकरिया, पत्ताखोर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्लीः पहला पुस्तकालय संस्करण-2005, पृ. 186
8. वहीं से, पृ. 204
9. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2012, पृ. 917
10. कार्ल मार्क्स, उजरती श्रम और पूँजी, राहुल फाउंडेशन, लखनऊ, पहला संस्करणः जनवरी 2006, पुनर्मुद्रणः दिसंबर 2013, पृ. 15
11. एम.एम. चन्द्रा, प्रोस्तोर, डायमंड पॉकेट बुक, नई दिल्ली संस्करण-2018, पृ. 14, 15
12. कार्ल मार्क्स, उजरती श्रम और पूँजी, राहुल फाउंडेशन, लखनऊ, पहला संस्करणः जनवरी 2006, पुनर्मुद्रण दिसंबर-2013, पृ. 21

13. बच्चन सिंह, निराला का काव्य (औपनिवेशिक और उत्तर औपनिवेशिक समय), आधार प्रकाशन, पंचकूला हरियाणा, प्रथम संस्करण–2005, पृ. 107

14. एम. एम. चन्द्रा, प्रोस्तोर, डायमंड पॉकेट बुक, नई दिल्ली: संस्करण 2018, पृ. 11, 12

15. वहीं से, पृ. 12

16. वहीं से, पृ. 79

17. कार्ल मार्क्स, उजरती श्रम और पूँजी राहुल फाउंडेशन, लखनऊ, पहला संस्करण: जनवरी 2006, पुनर्मुद्रण दिसंबर 2013, पृ. 8

18. मधु कांकरिया, पत्ताखोर राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला पुस्तकालय संस्करण–2005, पृ. 200

19. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2012, पृ. 90

20. यशोभूमि अखबार, दिनांक 31 जनवरी, 2023 को देखा गया।

21. एम. एम. चन्द्रा, प्रोस्तोर, डायमंड पॉकेट बुक, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ. 100

22. कार्ल मार्क्स, मजदूर दाम और मुनाफा राहुल फाउंडेशन, लखनऊ, पहला संस्करण: जनवरी 2006, पुनर्मुद्रण: दिसंबर–2013, पृ. 09

23. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली: पहला संस्करण–2012, पृ. 104

24. अश्विनी कुमार पंकज, माटी–माटी अरकाटी (हिल कुली कोता की कहानी) राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2016, पृ. 23

25. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2012, पृ. 114

26. वहीं से, पृ. 171

27. एम. एम. चन्द्रा, प्रोस्तोर, डायमंड पॉकेट बुक, नई दिल्ली, संस्करण–2018, पृ. 80

28. कार्ल मार्क्स, उजरती श्रम और पूँजी, राहुल फाउंडेशन, लखनऊ, पहला संस्करण: जनवरी 2006, पुनर्मुद्रण दिसंबर 2013, पृ. 10

❑❑

स्त्री विमर्श के विविध पहलू और तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ

योग्यता भार्गव

बदलते परिवेश, वैश्विक दृष्टि ने न केवल विज्ञान को प्रभावित किया है बल्कि साहित्य के क्षेत्र में भी इस वैचारिक चेतना को विस्तार दिया है। साहित्य में आज अनेक विमर्शों के बीच स्त्री विमर्श अपनी पृथक पहचान बनाए हुए है और इस पहचान के विविध पहलुओं को रखती है। तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ, जिनमें विद्रोह संघर्ष और मानसिक पीड़ा स्पष्ट दिखाई देती है। इनमें साधारण फलक पर लिखी कहानियाँ समय की ओट में छुप कर भी एक चित्कार के साथ स्त्रियों की वेदना पाठक तक पहुँचाते हैं। तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में स्त्री जीवन की यातना, वेदना, परिवार के शोषण द्वारा केवल उपयोग की वस्तु मानी जाती हैं तो किसी कहानी की नायिका केवल बच्चे पैदा करने वाली मशीन, पितृ सत्ता के प्रतिनिधियों द्वारा स्त्री केवल घर में ही रह सकती है, वह बाहर जाकर काम नहीं कर सकती है।

तेजेन्द्र शर्मा वर्तमान के उन चर्चित लेखकों में प्रमुख हैं जो विदेशी भूमि पर रहते हुए हिंदी साहित्य के सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले प्रवासी साहित्यकारों में अपना शीर्षस्थ स्थान रखते हैं। यह इसलिए नहीं कि उनका साहित्य अधिक है, अपितु इसलिए की वह लंदन निवासी होकर भी भारतीय भाषाओं, संवेदनाओं और बदलते परिवेश पर अपनी पैनी दृष्टि रखते हैं। इनकी कहानी को पढ़ते समय नई भावभूमि पर पहुँचे पाठक का हृदय द्रवित हो जाता है। उसके मन मस्तिष्क में जो जिज्ञासा उपजती है, वह कहानी के अंत तक बनी रहती है। सबसे बड़ी बात इनकी झंझोर देने वाली अंर्तदृष्टि कहानी के अंत में परिवेश, विभिन्नता बदलती जीवन दृष्टि तथा अंतरिक द्वंद्व की ओर लेकर जाती है। इनके पात्र स्वयं से जूझते–झगड़ते अंत में एक मजबूत कदम उठाकर कठोर निर्णय लेते हैं।

फिर चाहे 'कल फिर आना' की पात्र 'रीमा' हो या 'रेत का घरौंदा' कहानी की 'दीपा' वहीं 'भंवर' कहानी की पात्र 'रमा' ये नायिकाएँ इतनी आधुनिक है कि बिना परिणाम

के जीवन में एक नया कदम उठती हैं। हालाँकि इसके पीछे इनकी एक लंबी यात्रा है जो संत्रास से शुरू हो सुख तक जाती है। जहाँ इंसान संतुष्टि के लिए जीवन को नई दिशा देता है।

दूसरी तरफ तेजेन्द्र जी की रचनाओं में वे स्त्री पात्र है जो भारतीय स्त्री होने के दंश के साथ जीवन जी रही है, क्योंकि उन्हें प्रभावित करता है समाज। वे लगातार सामाजिकता की देहरी पर खड़ी अंदर ही अंदर सुलझती हुई अभिशप्त जीवन जीने के लिए स्वयं को मजबूर कर अंतरात्मा को मार जीवन के बोझ को ढो रही हैं, इनमें शामिल हैं– 'देह की कीमत' की पात्र परमजीत उर्फ पम्मी, 'मलबे की मालकिन' की पात्र 'अमिता' 'मुझे मुक्ति दो' की पात्र 'लता' तो वहीं 'कैंसर' कहानी की पात्र 'पूनम' इसी के साथ 'सिलवट' कहानी की पात्र 'सुलक्षणा' की भावनात्मक पीड़ा का सजीव चित्रण इनकी कहानियों में देखने को मिलता है। फिर चाहे 'स्मृतियों के घेरे' कहानी संग्रह की कहानियाँ हों या 'नयी जमीन नया आकाश' का धरातल लिए हुए कहानी।

तेजेन्द्र शर्मा के पास वैश्विक समुदाय को समझने की खास विचारशील विचारधारा है जो भारतीय परिवेश से विश्व–परिवेश तक प्रवाहित होती है। जहाँ उनकी रचना धार्मिता का व्यापक फलक है। उनकी लेखनी नई सदी की दूरदर्शी दृष्टि के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर चुकी है।

इनके पात्र स्त्री के शरीर में बीमारी जैसे ब्रेस्ट केंसर से संबंधित समस्याओं के अंतर्गत स्त्री–पुरुष के प्रेम के द्वंद्व को भी उजागर करते हैं कि कैंसर जैसी बीमारी रिश्तों पर हावी हो जाती है। वह उन सभी मन: स्थितियों अंतर चेतनाओं, अंतद्र्वंद्वों को अपनी कहानियों में दर्शाते हैं जो वर्तमान की स्त्रियाँ केवल इसलिए झेल रही है, क्योंकि वे विद्रोह नहीं कर पा रही हैं, वहीं कुछ नारी पात्र पाठक को अपने विद्रोह से चौंका देती हैं।

'देह की कीमत' की 'परमजीत' का संघर्ष मध्यमवर्गीय मानसिकता के टकराव को दर्शाता है जो परमजीत एक 'हरदीप' के आकर्षण का शिकार हो अपरिचित परिवारों के बीच मेल करा कर उसका जीवन त्रासदी से भर देती है। हरदीप का अवैध तरीके से जापान जाना और फिर वही मृत्यु को प्राप्त हो जाना नायिका परमजीत के लिए नासूर बन जाता है। एक स्त्री होकर भी हरदीप की बीजी परमजीत को मध्यवर्गीय मानसिकता के कारण अनावश्यक उपेक्षित कर उलाहना देती रहती हैं।" पुत्तर नूँ खा गई, हुण ओसदे पैसे बी खा जाएगी।"[1]

वह घर में होती सब घटनाओं से परिचित 'परमजीत' केवल मौन रह कर यत्रवत सब निहार रही है। इस कहानी का अंतिम पहरा इस वेदना को स्वयं प्रगट करता है–

"अस्थियाँ और बैंक ड्राफ्ट पहुँचते हैं। बाहर बीजी का प्रलाप जारी है दारजी दु:खी हैं, और अंदर कमरे में पम्मी अपनी सूजी आँखों से कलश को देख रही है। उसने तीन लाख

रुपये का ड्राफ्ट उठाया.... उसे समझ नहीं आ रहा था कि यह उसके पति की देह की कीमत है या उसके साथ बिताए पाँच महीनों की कीमत।"[2]

यहाँ लेखक की स्त्रियों के प्रति बड़ी मार्मिक दृष्टि उजागर होती है। हरदीप केवल पाँच महीने परमजीत को भोग कर अपने सपने पूरे करने विदेश जापान चला जाता है। वहीं परमजीत (पम्मी) पूर्ण होकर भी अभिशप्त जीवन जीने को तैयार है। वह न किसी का प्रतिरोध करती है न स्वयं से लड़ सकती है। उसके मन में केवल एक ही प्रश्न है और निराशा में डूबी वह स्वयं। इससे ज्यादा स्त्री दशा का क्या चित्रण हो सकता है।

इसी प्रकार तेजेन्द्र जी की 'मलबे की मालकिन' कहानी पात्र 'अमिता' का जन्म गरीब परिवार में होता है वह पढ़ी लिखी है, परंतु गरीबी के चलते मात्र 17 वर्ष की उम्र में विवाह हो जाता है। उसका क्षोभ कुछ इस तरह व्यक्त होता है– "आराम इस शब्द से अब मेरा संबंध सदा के लिए टूट चुका था। रामखिलावन यादव के परिवार ने एक दरिद्र परिवार की पुत्री को अपने घर की बहू बनाया था। बहू के लिए आवश्यक था कि वह घर में गरीब बैल की तरह जुती रहती। गरीब पिता के घर भी गरीब थी और अमीर ससुराल में भी गरीब।"[3]

इस कहानी में जितनी विवशता है उतना ही विद्रोह। इस कहानी की नायिका जब माँ बनने वाली होती है तो कहती है कि "मुझे अपनी माँ जैसी नहीं बनना था। ढेर से बच्चे पैदा करो और जीवन भर उनकी परवरिश में खटते रहो।"[4]

मलबे की मलकिन की नायिका त्रासद जीवन से मुक्ति चाहती है और इस मुक्ति के लिए वह इस बात को भी स्वीकार कर लेती है। जब खिलावन यादव का परिवार आसानी से कह देता है कि "इस परिवार को तुम्हारी कोई जरूरत नहीं। अपनी मनहूस सूरत और उससे भी अधिक मनहूस बेटी को उठाओ और यहाँ से दफा हो जाओ।"[5]

इस कहानी में एक तो वर्तमान समय में भी बेटी जन्म को मनहूस मानने वाले समाज की ओर इशारा है तो वहीं स्त्री जीवन के संघर्ष को उजागर किया गया है। जब नायिका अपना घर छोड़ देती है तो तमाम संघर्ष के बीच भी बौद्धिक दृष्टि दूरदर्शी रखती है। वह विचार करती है कि– "जिंदा रहना! जिजीविषा कितनी अर्थपूर्ण स्थिति है।"[6]

इस प्रकार स्त्री जीवन की विडंबना को यह कहानी उठाती है कि जीवन के हर मोड़ पर उसे खुद को साबित करना पड़ता है बिना गलतियों के वह मुजरिम मान ली जाती है। जब 'समीर' उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखता है तो वह स्वयं अपने को मलवे में दबा जाती है। इस प्रकार 'रेत का घरौंदा' कहानी स्त्री प्रेम के दमन और उसे अपमानित करने की कहानी है। जिसमें रंग भेद स्थिति की उपज है। इन सभी कहानियों में भावों की सहजता, अनुभवों की गहराईयाँ और जीवन के कटु सत्य के साथ सृजन की पैनी दृष्टि है।

तेजेन्द्र जी की कहानियों को पढ़ते समय महसूस किया जा सकता है कि उन्होंने पुरुष लेखक होते हुए भी स्त्री संवेदनाओं को इतने मार्मिक ढंग से चित्रित किया है कि कहानी प्रभाव, कथ्य, शिल्प की दृष्टि से पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर शुरू से अंत तक बांधे रखती है। यह केवल तेजेन्द्र शर्मा ही कर सकते हैं।

इसका कारण उस पक्ष पर लिखना जहाँ अभी भी तमाम योजनाओं, जागरूकता और बदलते परिवेश के बाद भी घोर अंधकार है और ये अंधकार मन का है जहाँ स्त्रियों के समर्पण के बाद भी केवल उनको मिलता है दोयम दर्जे का स्थान।

वैसे तो स्त्री–पुरुष दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। समाज के विकास में जितना योगदान पुरुष ने दिया है तो वही योगदान स्त्री ने भी दिया है, किंतु आज भी वही भेद। यहाँ अपनी कहानियों में लेखक तेजेन्द्र इन रिश्तों की अच्छी परताल करते नजर आते हैं। समाज में जो भी नियम व मान्यताएँ निर्मित हैं वह सब पुरुषवादी सोच के कारण ही निर्मित हुई हैं। इन्हीं भेदभाव को दर्शाती है इनकी कहानियाँ। ये न केवल किसी देश की स्त्री है न एक समाज की बल्कि संपूर्ण स्त्री समाज की दशा है जो इस संसार में स्त्री रूप में जीवन लेकर जन्मी है।

इनकी कुछ विशेष निर्णय लेती स्त्रियों के आधुनिक जीवन दृष्टि को उजागर करती कहानियाँ हैं। जिनमें 'भंवर' कहानी की नायिका अपने एक निर्णय से पाठक के हृदय में प्रश्न छोड़ जाती है साथ ही उसे बदलते परिवेश से परिचित कराती है। जहाँ पर स्त्री, स्त्री होने की सारी मर्यादाएँ ताक पर रख केवल माँ बनने का सु:ख लेना चाहती है। यहाँ स्त्री पात्र खुलकर अपनी इच्छा आकांक्षा को पूरा करती पात्र रमा अपने परिचित भरत से कहती है कि–

"मैंने तुमसे आज तक कभी कुछ नहीं माँगा, नहीं माँगा ना। भारत मुझे एक चीज दे दो.......... बस एक ही चीज...........मुझे एक बच्चा दे दो...............अपना बच्चा.......... अपनी निशानी"[7]

लेखक की दृष्टि घर से निकल कर बाहर बाजार की स्त्रियों पर भी जाती है। वर्तमान में स्त्रियाँ जिस स्थिति की शिकार हैं। उन परिस्थितियों में कई बार वह ऐसे अनैतिक आचरण की ओर बढ़ जाती हैं जहाँ से लौटना संभव नहीं ठीक इसी प्रकार की कहानी है 'श्वेत–श्याम'। यह एक ऐसी नारी के जीवन पर आधारित है, जिसने अपने लिए एक गलत रास्ता चुना। अपराध बोध के कारण वह निरंतर असहज रहती है और घर से पाँच सितारा होटल तक का उसका सफर उसे तिल–तिल कर मारता रहता है।

वह शरीर बेच–बेचकर तनाव और डिप्रेशन में आ जाती है, उसके मन में लगातार एक ही सवाल रहता है कि वह अपने पति का सामना कैसे करेगी। जीवन की एक बड़ी

हकीकत से सामना तब होता है। जब वह एक रात ठीक अपने देवर के सामने खड़ी होती है। ऐसी घटना की कभी उसने कल्पना नहीं की थी। वह अपने ही फैलाए जाल में उलझ कर अपराधबोध से सहमी है। "दरवाजे पर थाप दी। दरवाजा खुला, "हैलो" और संगीता की आँखों के सामने जो विस्फोट हुआ वो तो हेमंत के बर्फीले बार्डर पर भी नहीं हो सकता था। अंधेरा-सा छाने लगा था। बेहोश हुई जा रही थी संगीता। सामने सुनील खड़ा था- उसका अपना देवर। देवर ग्राहक और भाभी।[8]

सुनील की आँखों में और आवाज में अविश्वास था पर इस घटना के बाद एक प्रश्न और उठता है कि क्या यहाँ केवल....... दोषी है या फिर समाज की अन्य व्यवस्था? ठीक उसी तरह एक और प्रश्न उठता है। संगीता के सामने खड़ा उसका देवर 'सुनील' क्या निरअपराध है? शायद नहीं; क्योंकि अगर वह पथभ्रष्ठ है तो फिर उसका देवर भी उतना ही व्यभिचारी है जो पाँच सितारा होटल में उसके साथ रंगरलियाँ मनाने के लिए खड़ा है।

इस प्रकार संपूर्ण वर्तमान यथास्थिति नारी-पुरुष की उच्छृंखल होती अनैतिक स्थिति की परताल करती है तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ।

नारी शोषण हमारे समाज की बहुत बड़ी समस्या है। अक्सर समाज में देखा जाता है कि नारी का सबसे अधिक शोषण यदि कहीं होता है तो वह उसके परिवार एवं अपनों द्वारा ही होता है। पति द्वारा अपनी पत्नी के शोषण चित्रण 'मुझे मुक्ति दो' नामक कहानी में हुआ है। 'लता' का विवाह एक उच्चकोटि के लेखन करने वाले परिवार में हुआ है। लता को मात्र इतना ही अधिकार है वह पति द्वारा मिली यातनाओं और दुखों को बेआवाज सहती रहे। पति के व्यभिचारी आचरण की जानकारी होने पर भी वह कुछ नहीं बोल पाती। पति के घर में उसका एकमात्र अधिकार था। "अपने आपको अभावों के जीवन का अभ्यस्त बनाना। रमेशनाथ की पगार का एक बड़ा हिस्सा तो प्रेसक्लब के शराब के बिल में चला जाता है: बच्चों के लिए दूध, उनके स्कूल की फीस, किताबें, कपड़े सब दोयम दर्जे की आवश्यकताएँ थीं।"[9] दो बच्चों की माँ लता प्रत्येक रात अपने पति की गालियाँ सहकर भी उसी के साथ रहने को विवश है।

तेजेन्द्र शर्मा के कई पात्रों में अपराधबोध की समस्या, अकेलापन तथा परिस्थितिजन्य सैलाव भी इनकी कहानियों में देखने मिलता है। फिर उनकी कहानी 'वह एक दिन' हो या 'कल फिर आना', टूटते बिखरते रिश्ते, य अपनत्व की भावना से रिक्त हो चुके संबंध आदि का चित्रण उनकी कहानियों की विशेषता है। तेजेन्द्र शर्मा की कुछ कहानियाँ भारतीय परिवेश पर आधारित हैं तो कुछ पाश्चात्य परिवेश को उजागर करती हैं। इनकी कई कहानियों में भारतीय रीति-रिवाजों, पर्व त्योहार, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों से आगत समस्याओं का वर्णन किया गया है। उनकी कहानियाँ जीवनधर्मी हैं। वे जीवन के

गहरे अँधकार में धँसती हैं और जीवन के लिये मूल्यावन सत्य को बचाकर रखती है। उनकी कहानियाँ समय के साथ प्रेरणा देती हुई वास्तविक जीवन, यथार्थ के दौर से गुजरते हुए सांसारिक जीवन से परिचय कराती हुई पाठक के मन को झकझोरती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रवासी होने का दायित्व तथा भारतीय डायस्पोरा की अंतर्निहित यात्रा करते हुए तेजेन्द्र शर्मा भारतीय समुदायों की पड़ताल में संलग्न साहित्य की यात्रा के महत्वपूर्ण साहित्यकार हैं।

संदर्भः

1. देह की कीमत (स्मृतियों के घेरे) तेजेन्द्र शर्मा, यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ. 32
2. यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली।
3. मलबे की मालकिन – तेजेन्द्र शर्मा, स्मृतियों के घेरे, यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ. 36
4. यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ. 37
5. यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ. 38
6. यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ. 39
7. भंवर– स्मृतियों के घेरे– तेजेन्द्र शर्मा, यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली।
8. श्वेत–श्याम–तेजेन्द्र शर्मा, स्मृतियों के घेरे, यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ. 113
9. 'मुझे मुक्ति दो' – स्मृतियों के घेरे – तेजेन्द्र शर्मा / यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ. 60

❑❑

भारतीय डायस्पोरा में 'कबीर पंथ'

मुन्नालाल गुप्ता

सारांशः

भारत में कबीर को मानने वाले अधिकांश श्रमिक, दस्तकार, किसान वर्ग के लोग थे। औपनिवेशिक काल में अंग्रजों द्वारा भारत में आर्थिक, प्रशासनिक और सैनिक क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तनों के कारण भारतीय श्रमिकों, किसानों, हस्तशिल्पियों की स्थिति बहुत खराब होती चली गयी। इसके कारण रोज़ी-रोटी की खोज में श्रमिकों को औपनिवेशिक शासन के चंगुल में फंसकर कई देशों में प्रवासित होना पड़ा। ये प्रवासित भारतीय श्रमिक अपने साथ अपनी 'सांस्कृतिक गठरी' में अपना धर्म, विश्वास पद्धति और पंथ को भी ले गए। इन धार्मिक पंचों में कबीर पंथी भी थे। दूर और अनजान देश में प्रारंभिक संघर्ष के समय में कबीर की शिक्षा, वाणी, बीजक इनका सहारा बना। धीरे-धीरे अर्थिक समृद्धि के साथ ये कबीर पंथी भारतीय डायस्पोरा ने अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ाया और अपनी अलग पहचान के लिए कई देशों में संगठन, मठ, आश्रम आदि बनाए। प्रस्तुत आलेख में विदेशों में भारतीय डायस्पोरा के बीच प्रचलित कबीर पंथ की विकास यात्रा के साथ-साथ उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में एक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। इस आलेख को तैयार करने के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में विदेशों में भारतीय डायस्पोरा के बीच प्रचलित कबीर पंथी संस्थाओं, आश्रमों, मठों आदि की गतिविधियों को आधार बनाया गया है और द्वितीयक स्रोत के लिए कबीर और कबीर पंथ से संबंधित पुस्तकों, शोधलेखों आदि का उपयोग किया गया है।

मुख्य शब्दः कबीर पंथ, भारतीय डायस्पोरा, चौका, सांस्कृतिक गठरी, पहचान, कबीर चौरा, झंडी, बंदगी, नृजातीय चिह्न।

समुद्रपारीय देशों में भारतीयों के प्रवासन और उन देशों में अपनी देश की मिट्टी, संस्कृति की यादों के साथ बस जाने की परिघटना ने भारतीय डायस्पोरा समुदाय को निर्मित किया है। यद्यपि यह प्रवासन सिंधु सभ्यता के समय से जारी है परंतु औपनिवेशिक कालीन

परिस्थितियों ने इसे और अधिक त्वरित कर दिया। औपनिवेशिक काल में भारतीयों का विदेश प्रवासन सिद्ध दोष, गिरमिटिया श्रमिकों, कंगनी और मेस्त्री, स्वतंत्र व्यापारी आदि के रूप में मॉरीशस (1834), त्रिनिदाद और टोबागो (1845), सूरीनाम (1873), दक्षिण अफ्रीका (1860), फ़ीजी (1879), गयाना (1838), न्यूजीलैंड (1840), कनाडा (1904) हुआ। (कुमार, 2017, पृ. 24) भारतीय प्रवासन के क्षेत्रीय, धार्मिक एवं कालगत विविधता ने भारतीय डायस्पोरा में विविधतापूर्ण और गतिशील धार्मिक परिस्थिति का निर्माण किया है। भारतीयों के बीच प्रचलित धार्मिक विश्वासों और धार्मिक पंथों ने विदेशी भूमि की बहुधार्मिक, बहुसांस्कृतिक और बहुनृजातीय परिस्थितियों के बीच भारतवंशियों को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया। परदेश में पहचान की उत्कंठा ने भी प्रवासी भारतीयों को विदेशी भूमि गंतव्य (होस्ट लैंड) पर भी स्वभूमि (होम लैंड) से संबंधित भारतीयता के नृजातीय चिन्हों (मार्कर) (पर्म, पंथ, भाषा, क्षेत्रीयता, स्थानीयता, जाति, खानपान, पहनावा, सामूहिक स्मृति आदि) से जोड़े रखकर उन्हें भारतवंशी बनाये रखा है। (भाटिया, 2001) परिणामस्वरूप, भारतवंशी त्रिनिदाद, मॉरीशस, फ़ीजी, गयाना, सूरीनाम आदि देश में आर्थिक और राजनीति उपलब्धि के शिखर तक पहुँच पाने में कामयाब हुए। कई विद्वानों का मानना है कि धर्म एवं पंथ डायस्पोरा का निर्माण नहीं करता बल्कि यह डायस्पोरा के आपसी जुड़ाव के लिए अतिरिक्त सामग्री प्रदान करता है। (पारेख, 1993, कोहेन, 1997:189, वर्टोवेक, 2000:10-15)

जब औपनिवेशिक काल में भारतीय श्रमिकों को विभिन्न देशों में खेती करने एवं अन्य संरचनात्मक कार्यों के लिए लाया गया तब ये भारतीय श्रमिक अपनी 'स्वभूमि' से बिछुड़ते हुए 'गंतव्य भूमि' में अपने साथ अपने देश की 'सांस्कृतिक गठरी' को ले आए। इस गठरी में भौतिक रूप में धर्म ग्रंथ, लोटा, हनुमान चालीसा, कबीर वाणी, बीजक, 'रविदास की अमृत बानी', आदि ग्रंथ और स्मृतियाँ, यादों में अपने धर्म, पंथ पूजा पद्धति, गाँव पंचायत और समाज के रीति-रिवाज, लोकगीत, लोक कहानी, बिरहा, खानपान आदि को साथ लाए। इस प्रकार भारतीयों के साथ-साथ उनकी संस्कृति भी गतिमान रही। इसी गतिमान सांस्कृतिक गठरी को जेम्स क्लिफोर्ड (1992) ने ट्रेवलिंग कल्चर कहा। इसीलिए, उन्होंने समुद्रपारीय देशों में प्रवासित होकर आने के बाद अपनी स्वभूमि की बादों/ स्मृतियों को गंतव्य देशों के पेड़ों, नदियों, सरोवरों और वनों, सड़कों, चौक-चौराहो आदि में अपनी परंपरागत देवी-देवताओं को पुनरुत्पादित और पुनस्थापित करना प्रारंभ किया। इसीलिए, कुछ ही वर्षों के बाद हर गाँव और शहर में छोटे-बड़े मंदिर, धार्मिक स्थल और धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाओं के साथ साथ डीह-स्थान, काली माई, कबीर स्थान आदि बन गया था। यही नहीं, उन्होंने अपने घर के द्वार पर, छत पर धार्मिक झंडी (आर्य समाजी, सनातनी या कबीर पंथी), आँगन में किसी पेड़ के नीचे 'पितरों का चौतरा' और झोपडी के एक कोने में 'देवकुर' (देवस्थान) की स्थापना कर डाली। (रामशरण, 1990:67) आज लगभग वे सारे

भारतीय धार्मिक एवं लोकप्रिय संप्रदाय, पंथ भारतीय डायस्पोरा के बीच उपस्थित हैं जो भारतीय भूमि पर थे।

भारत में कबीर और कबीरपंथः कबीर पंथ (कबीर का स्कूल) में वे सभी शामिल हैं जो कबीर और उनकी शिक्षाओं का सम्मान करते हैं, चाहे वे एक औपचारिक संगठन से संबंधित हो या नहीं। सगुरु प्राकट्य धाम, लहरतारा, बनारस के अनुसार वैश्विक स्तर पर कबीर पंथ (कबीर पंथ के अनुयायी) अनुयायियों की संख्या 25 मिलियन और 300 कबीर आश्रम हैं। महापात्र (2003) के अनुसार भारत में कबीर पंथियों की संख्या 9.6 मिलियन है।

कबीर एक संत कवि थे जो पंद्रहवीं शताब्दी के दौरान उत्तर भारत में रहते थे। कबीर पंथी 1398 ईस्वी को कबीर का जन्म वर्ष मानते हैं। ऐसा माना जाता है कि कबीर एक ब्राह्मण विधवा से पैदा हुए थे जिसे त्याग दिया था। बुनकर जाति के एक गरीब मुस्लिम जोड़े ने उन्हें वाराणसी के पास एक तालाब में कमल के फूल पर आराम करते हुए पाया और उनका पालन-पोषण करने के लिए उन्हें घर ले गए। यह भी माना जाता है कि उनका जन्म मई के अंत या जून की शुरुआत में पूर्णिमा की रात को हुआ था, और इसलिए उनके जन्म का सालगिरह (जयंती, जैसा कि इसे कैरिबियन में कहा जाता है) हमेशा इस समय मनाया जाता है। उनके गुरु (शिक्षक) संत परंपरा के संस्थापक रामानंद थे। संत परंपरा में वैष्णव तत्वों का मिश्रण था। सूफी इस्लाम के साथ हिंदू धर्म एक विश्वास-आधारित परंपरा का निर्माण करते हैं जो शुद्ध प्रेम और ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत भक्ति पर केंद्रित है (आमतौर पर त्रिनिदाद में अंग्रेजी शब्द "ईश्वर" कबीर पंथियों द्वारा उपयोग किया जाता है। वे अन्य परंपराओं के शब्दों का भी उपयोग करते हैं, जिसमें शामिल हैं राम, अल्लाह, सत-गुरु, सब-बिधि, गुरु ब्रह्मा और मुधमंगल आगर) इस प्रकार पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के दौरान फली-फूली संत परंपरा एक बड़े धार्मिक सुधार का हिस्सा बनी जिसे भक्ति आंदोलन के रूप में जाना जाता था। अन्य प्रसिद्ध धार्मिक नेता जो इस अवधि के दौरान सक्रिय थे, उनमें सिख परंपरा के संस्थापक गुरु नानक और हरे कृष्ण आंदोलन के संस्थापक चैतन्य आदि शामिल हैं।

संत कवियों ने जाति-व्यवस्था पर प्रहार किया था। खासकर समाज के श्रमिक वर्ग के लोग निर्गुण भक्ति को मानने वाले संत रविदास, कबीर तथा शिव नारायण के अनुयायी थे। उन्होंने सिखाया कि मंदिर के अनुष्ठान, मूर्तियों (मूर्तियों या चिह्नों) की पूजा, भिक्षा, तीर्थयात्रा (चाहे मक्का या वाराणसी), उपवास और तपस्वी प्रथाएँ, सब बेकार गतिविधियाँ हैं। बल्कि, प्रेम की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति और भक्त के आध्यात्मिक विकास में भगवान की भक्ति ही सब कुछ है। चूँकि हम में से प्रत्येक के भीतर भगवान की उपस्थिति है, इसलिए मंदिरों में भगवान की तलाश करना अनावश्यक है। इस प्रकार अपने शरीर और

बुद्धि की उचित देखभाल करना धार्मिक सगुण की बढ़ोतरी के लिए आवश्यक है। अपने जीवनकाल के दौरान कबीर ने अपनी शिक्षाओं को मौखिक रूप से प्रसारित किया। हालाँकि, उनकी मृत्यु के बाद, उनके शिष्यों ने उनकी शिक्षाओं को लेखन का रूप दिया और आज इन ग्रंथों के आधार पर कबीर पंथ में कई समूह बन गए। कबीर के मुख्य विचार उनके ग्रंथों बीजक, रमैनी, सबद में हैं।

कबीर, वाराणसी में लहरतारा के पास रहते थे। कबीर का प्रमुख धर्मस्थान कबीरचौरा आज भी प्रसिद्ध है। यहाँ पर एक मठ और कबीरदास का मंदिर है, जिसमें उनका चित्र रखा हुआ है। देश के विभिन्न भागों से सहस्रों यात्री यहाँ पर दर्शन करने आते हैं। कबीरदास ने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे बल्कि उनके भजनों तथा उपदेशों को उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया। इन्होंने एक ही विचार को सैकड़ों प्रकार से कहा है और सब में एक ही भाव प्रतिध्वनित होता है। ये उन्होंने राम नाम का महिमामंडन किया, एक ईश्वर (एकेश्वरवाद) में विश्वास किया और कर्मकांडों के सख्त विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को नहीं मानते थे। ये उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्मा को मानते थे और साफ कहते थे कि वही शुद्ध ईश्वर है, चाहे उसे राम कहो या अल्ला।

आज छत्तीसगढ़ कबीर पंथ का एक प्रमुख केंद्र है। कबीर पंथियों द्वारा समय-समय पर मेले का आयोजन किया जाता है। इन अवसरों पर कबीर-पंथी आचार्य प्रवचन करते हैं और कबीर के उपदेशों का प्रचार करते हैं। कबीर-पंथ में बंदगी का बड़ा महत्व है। कबीर पंथी मानव शरीर को पंचतत्वों से निर्मित मानते हैं। ये पंचतत्वों से विजय प्राप्त करने के लिए पाँच बार बंदगी करना अत्यंत आवश्यक समझते हैं। कबीर-पंथ में दीक्षा की प्रथा आज भी है जिसे 'बरु' या कंठी धारणा कहते हैं। महंत साहब के शिष्यगण तुलसी के डंठल से कंठी बनाते हैं। गुरु (महंत) साहब उस कंठी को शिष्य के कंठ में बांधकर दीक्षा देते हैं। व्रतों और उत्सवों का भी कबीर-पंथ में समान महत्व है। समस्त व्रतों में पूर्णिमा के व्रत का महत्व सबसे अधिक है। इस दिन प्रत्येक कबीर पंथी सात्विक जीवन व्यतीत करने का संकल्प करते हैं। कबीर पंथियों में चौका विधान एक प्रमुख प्रक्रिया है, जिसे कबीर-पंथ के महंत संपन्न करते हैं। कबीर पंथी यह मानते हैं कि चौका विधान से मोक्ष संभव है। इसके चार प्रकार हैं- 1. आनंदी चौका, 2. जन्मीती या सहिल्सुत चौका, 3. चलावा या अष्ट प्रहरी चौका, और 4. एकोत्तरी चौका। कबीर पंथ में चौका विधान को त्रिदोष नाशक माना गया है। इन दोषों का नाश, कर्म, उपासना और ज्ञान से किया जा सकता है। (स्नातक, 1965, ब्रहाचारी, 2003, बाठ, 2007)

सभी कबीरपंथी संस्थाओं के कार्यों में शामिल है कबीर की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार, मेजबान देशों में भाई-चारा बढ़ाने के लिए कार्यक्रम करना, भारत से बड़े कबीरपंथी

महात्माओं को मेजबान देशों में कबीर वाणी पाठ, प्रवचन सत्संग करवाने की व्यवस्था करना, शिक्षा के लिए प्रयास करना आदि। भारत में कबीर पंथ की प्रमुख शाखाएँ:

क्र.सं.	शाखा का नाम	संस्थापक
1.	श्रुति गोपाल साहेब तथा कबीर चौरा काशी शाखा	श्रुति गोपाल साहेब
2.	श्री जागू साहेब तथा बिद्दुपुर गद्दी	जागू साहेब
3.	भगवान साहेब तथा भगताही शाखा धनौती, जिला-छपरा (बिहार)	भगवान गोसाई
4.	छत्तीसगढ़ शाखा के धर्मदास साहेब तथा वंशगद्दी, कुदुरमाल, जिला-कोरबा (छ.ग.)	मुक्तामणि नाम साहेब

स्रोत : महापात्र (2003)

भारतीय डायस्पोरा में कबीर पंथ और उनकी गतिविधियाँ: भारतीय डायस्पोरा से संबंधित कबीर पंथ मुख्यत: अनुबंध श्रमिक व्यवस्था के तहत उपनिवेशों में गए श्रमिक थे। इनकी उपस्थिति पूर्वी अफ्रीका के केन्या, तनजानियाँ, इथोपिया, यूगाण्डा, मॉरीशस, नेपाल, तिब्बत, श्रीलंका, गयाना, फ़ीजी, सुरीनाम, जमैका, त्रिनिदाड, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया, यूनाइटेड किंगडम, कनाडा और अमेरिका में विशेष रूप से है। कबीर पंथियों ने विदेशों में कबीर से संबंधित अनेक संस्थाओं को स्थापित किया है। इनमें कुछ प्रमुख रूप से निम्नलिखित है: त्रिनिदाद और टोबागो में 'कबीरचौरा मर्ठ' और 'सत्य कबीर निधी', 'कबीर पंथ एसोसिएशन' (KPA) (1932), फ़ीजी में गिरमिटिया कबीरपंथियों का 'कबीर सत परम प्रचारक महासभा' (1883), मॉरीशस में कबीर महासभा, 'द कबीरपंथी फेडरेशन', कनाडा में 'कबीर एसोसिएशन ऑफ टोरंटो' (2011) आदि।

कैरिबियन/ करीबियाई क्षेत्र में कबीर पंथियों की वास्तविक संख्या को निर्धारित करना या कबीर पंथी समुदाय के ऐतिहासिक विकास को सटीकता के साथ निर्धारित करना असंभव है, क्योंकि भारत में कबीर पंथियों की गणना अन्य हिंदू धार्मिक पंथ के अनुयायियों से अलग नहीं की जाती है। कैरिबियन में अधिकांश कबीर पंथी त्रिनिदाद, गुयाना और सूरीनाम के उन क्षेत्रों में निवास करते हैं, जहाँ औपनिवेशिक काल के दौरान भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की संख्या सबसे अधिक थी। कुछ मठों (धार्मिक नेताओं) का अनुमान है कि दस हजार या उससे अधिक कबीर पंथी वर्तमान में त्रिनिदाद में रहते हैं, और उससे कुछ कम गुयाना और सूरीनाम में रहते हैं। अपेक्षाकृत छोटी संख्या के बावजूद, कैरिबियन में कबीर पंथ एक सक्रिय और जीवंत समुदाय है। कबीर पंथियों और सनातनवादियों के बीच सहयोग और अंतर्विवाह के कारण भी इनकी संख्या में कमी आई हो। संख्या में कमी का

कारण चूँकि कुछ कबीर पंथियों ने, जिन्होंने एक साथ सनातनी प्रथाओं का पालन किया था, ने अंततः कबीरी प्रथाओं को छोड़ दिया। कबीर पंथियों और मुसलमानों के बीच भी अंतर्विवाह हुआ परंतु ऐसा उदहारण कम है।

कैरिबियन में कबीर पंथियों संबंधित कुछ लिखित संदर्भ 1893 ईस्वी में प्रकाशित डी. डब्ल्यू डी. कोमिंस के नोटः 'भारत से त्रिनिदाद के लिए उत्प्रवासन *(नोट ऑन इमिग्रेशन फ्रॉम इंडिया टू त्रिनिदाद)* में मिलता है। कॉमिंस की रिपोर्ट में, कौलेसर के नाम से जाने वाले एक अप्रवासी ने बताया कि लगभग 150 कबीरी तब त्रिनिदाद में रहते थे। जिनमें 20 ब्राह्मण थे, 7 मुसलमान थे, और अन्य कोहर और चमार सहित कई निचली जातियों से थे। कबीर पंथ एसोसिएशन (केपीए) की 60वीं वर्षगाँठ के स्मरणोत्सव में त्रिनिदाद में कबीर पंथी परिवार की पाँच पीढ़ियों का पता लगा। इस परिवार के पूर्वज, गोकुल साव और गुलजरिया फूल, 1845 में भारत से गिरमिटिया मजदूरों को त्रिनिदाद लानेवाले फटेल रज्जाक नामक जहाज पर सवार होकर त्रिनिदाद पहुँचे। फिर भी ऐसा लगता है कि इन प्रारंभिक वर्षों के दौरान कबीर पंथियों के बीच बहुत कम औपचारिक संगठन होंगे। कबीर की कविता का पाठ करना और उनके सम्मान में भजन (भक्ति गीत) गाना काफी हद तक एक पारिवारिक मामले या कबीरियों के छोटे समूहों की गतिविधि बना रहा जो बगान एस्टेट में रहते होंगे।

2003 ईस्वी में त्रिनिदाद में महंतों और अन्य कबीर पंथियों के साथ कैरोलिन वी, पैगंबर के साथ-साथ जे हीरामन द्वारा 1970 ईस्वी के दशक की शुरुआत में किए गए साक्षात्कारों और पिछले बीस वर्षों में कई स्मारक पुस्तिकाओं में प्रकाशित व्यक्तिगत इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर पंथियों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक औपचारिक संगठन 1880 ईस्वी के दशक में उभरा जब भारत के एक महंत मिठू दास ने ब्रिटिश गुवाना (अब गुयाना) में डेमेरारा के रास्ते त्रिनिदाद का दौरा किया। वह कई महीनों के बाद भारत लौट आया। बाद में कबीर पंथी गोबिन दास ने त्रिनिदाद का दौरा किया और जगी दास को त्रिनिदाद का पहला महंत नियुक्त किया, उन्हें और उनके अनुयायियों को / कंठी, तुलसी की लकड़ी के गोल टुकड़े को एक स्ट्रिंग पर मनके और गले में पहना जाने के प्रतीक के रूप में वितरित करने के लिए अधिकृत किया। इसके अलावा, वाराणसी से पाँच कबीरी मिशनरी 1910 ईस्वी में एस एस गंगा पर सवार होकर त्रिनिदाद पहुँचे। त्रिनिदाद में कबीर पंथियों की संख्या भारत से अनुबंध प्रणाली की अवधि के दौरान मजदूरों के आगमन, प्राकृतिक वृद्धि और मिशनरी कार्यों के संयुक्त परिणाम के रूप में बढ़ी। चार या पाँच कुटिया (पुजारियों या अनुष्ठान के नेताओं के लिए शेड जैसी संरचनाएँ) सामूहिक पूजा के लिए बगान एस्टेट में खड़ी की गई थीं। अगोधिनी बस्ती की कुटिया को छोड़कर जो अब एक स्कूल बन गया है, बाकि सभी पुरानी कबीरी कुटिया अब गायब हो गयी है।

त्रिनिदाद, ब्रिटिश गयाना और डच गयाना (अब सूरीनाम) में महंतों और अनुयायियों की संख्या में वृद्धि के साथ 1930 ईस्वी के दशक में कबीर पंथ का प्रतिनिधित्व करने वाले एक औपचारिक संगठन कबीर पंथ एसोसिएशन (KPA) की स्थापना 1932 में त्रिनिदाद में हुई थी। KPA त्रिनिदाद की औपनिवेशिक कॉलोनी में कानूनी रूप से स्थापित पहला धार्मिक संगठन था। इस संगठन के माध्यम से, 1950 ईस्वी के दशक में स्कूलों का निर्माण किया गया (एक सिपरिया में और दूसरा एगोस थिनी सेटलमेंट पर), नए महंतों को मान्यता दी गई, और अनुष्ठान अभ्यास को नियमित किया गया। केपीए के नेता और त्रिनिदाद के सबसे प्रसिद्ध महंतों में से एक, खेदार दास, फ्रीपोर्ट क्षेत्र में एक प्रसिद्ध रहस्यवादी और शिक्षक थे। 1964 ईस्वी में उनके अंतिम संस्कार में हजारों लोग शामिल हुए थे। 1990 के दशक तक, केपीए त्रिनिदाद में कबीर पंथ का एकमात्र प्रतिनिधि औपचारिक संगठन था। हालाँकि, समुदाय के भीतर सैद्धांतिक और राजनीतिक संघर्ष ने इसे दो और संगठनों में विभाजित कर दिया: कबीर चौरा मठ, वाराणसी, भारत और सत्य कबीर निधि। गुयाना या सूरीनाम में कानूनी रूप से स्थापित ऐसे कोई संगठन नहीं है।

गुयाना और सूरीनाम में औपचारिक संगठनों की अनुपस्थिति और त्रिनिदाद में हालिया गुटबाजी के बावजूद, कैरिबियन में कबीर पंथियों के बीच अनुष्ठान काफी सुसंगत है। यह इस समुदाय के अपेक्षाकृत छोटे आकार, सामान्य रूप से महंतों की कम संख्या (त्रिनिदाद में केवल दो दर्जन महंत हैं), और इन देशों में महंतों के बीच नियमित बातचीत के कारण ही संभव हुआ है। कुछ त्रिनिडाडियन महंत नियमित रूप से गुयाना और सूरीनाम विशिष्ट परिवारों या अनुष्ठान कार्यों के लिए जाते रहते हैं, साथ ही गुयाना और सूरीनाम के महंत नियमित रूप से त्रिनिदाद भी आते हैं। अधिकांश कबीर पंथी अपने घरों में अपनी अनुष्ठान गतिविधियों का संचालन करते हैं, हालाँकि कुछ परिवार अपने यार्ड के छोटे मंदिरों में करते हैं। इनमें से ज्यादातर इन रस्मों के दौरान सफेद रंग के कपड़े पहनते हैं। कैरिबियन में कबीरियों का एक-दूसरे के लिए एक समान अभिवादन है: *बंदगी साहब।* वे कबीर की कविता और शिक्षाओं के सभी तीन प्राथमिक संकलित ग्रंथों से परिचित हैं, लेकिन बीजक कैरिबियन कबीर पंथियों के लिए एक महत्वपूर्ण पाठ है क्योंकि कैरेबियन में भारतीय मजदूरों की एक बड़ी संख्या पश्चिमी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से थी।

कैरिबियन में कबीर पंथियों के लिए सबसे आम धार्मिक आयोजन कबीर सत्संग, झंडा, चौका और कबीर बीजक ज्ञान यज्ञ हैं। कबीर सत्संग, कबीर भजन, कबीर ग्रंथों (विशेषकर बीजक) के पढ़ने पर केंद्रित है। सत्संग एक सामूहिक प्रथा है जो कैरिबियन में अधिकांश हिंदुओं के लिए आम है। इसमें एक हवन (अग्नि समारोह), वाद्य संगत के साथ भजनों का समूह गायन, एक पंडित या महंत द्वारा पढ़ाया जाने वाला सार्वजनिक धार्मिक पाठ और प्रसाद का वितरण शामिल है और इसके साथ कबीर की शिक्षाओं से सीखे गए

सबक। कबीर सत्संग साप्ताहिक या मासिक हो सकते हैं और वे निजी घरों में आयोजित किए जाते हैं। कुछ समुदायों में जहाँ कबीर पंथियों और सनातनी हिंदुओं के बीच घनिष्ठ संबंध है, वे एक-दूसरे के सत्संग में भाग लेते हैं। हालाँकि, कबीर पंथी शायद ही कभी सनातनी मंदिरों में आयोजित सत्संग में भाग लेते हैं, क्योंकि अधिकांश कबीरी मंदिरों में पूजा नहीं करते हैं। एक अपवाद पेनल रॉक गाँव में कबीरी समुदाय का है जो मंदिर में संपन्न स्थानीय सनातनी धार्मिक गतिविधियों में नियमित रूप से भाग लेता है। और साथ वे उस सनातनी मंदिर का उपयोग कबीरी सत्संग सहित अपनी धार्मिक गतिविधियों के लिए भी करते हैं।

झंडा समारोह उन भक्तों के अनुरोध पर आयोजित किया जाता है जो गुरु (कबीर) या अपने भगवान (आमतौर पर अपने परिवार की सेवा करने वाले महंत) की स्तुति करना चाहते हैं। यह समारोह एक झंडा (झंडा/झंडी) उठाने पर केंद्रित है। कबीरी झंडा एक मोटे बाँस के खंभे से बना है (जो कि सनातनी झंडी के लिए इस्तेमाल की जाने वाली बाँस के खंभे की तुलना में बहुत लंबा होता है) सफेद सूती पट्टी से घिरा और उसपर सफेद सूती कपड़े का एक आयताकार कोणीय बैनर होता है, जिसमें महंत द्वारा हिंदी शब्द 'सोऽहं सत्य कबीर' अंकित होते हैं। इस झंडी को कबीर भक्त के घर के सामने आँगन में लगा दिया जाता है। इस प्रकार झंडे कबीरी घरों के लिए विशिष्ट मार्कर/ चिह्न के रूप में कार्य करते हैं। झंडा समारोह भी अक्सर चौका के हिस्से के रूप में संपन्न किया जाता है।

कबीर पंथी परंपरा में चौका सबसे जटिल अनुष्ठान है जो कबीरी परिवारों की ओर से महंतों द्वारा किया जाता है। एक नया जन्म, एक जन्मदिन या शादी का सालगिरह, एक स्नातक का जश्न मनाने के लिए या किसी करीबी पूर्वज की मौत का सालगिरह करने के लिए एक परिवार द्वारा चौका प्रायोजित करता है। इस समारोह से कम से कम इक्कीस दिन पहले प्रायोजक परिवार को माँस और शराब से दूर रहना होता है। समारोह की तैयारी अक्सर सुबह शुरू होती है। शाकाहारी भोजन महिलाओं द्वारा तैयार किया जाता है जिसमें शामिल होते हैं- चावल, रोटी, आधा दर्जन या अधिक सब्जी के व्यंजन, दाल, अचार और केले के पत्ते पर परोसी जाने वाली मिठाइयाँ। घर पर बेदी (मिट्टी की वेदी) और एक ऊपरी चादनी (चंदी) पुरुषों और युवाओं द्वारा तैयार की जाती है। परिवार और जिन लोगों ने उनकी सहायता की है वे इस अनुष्ठानिक भोजन में भाग लेते हैं जो इस झंडा समारोह से ठीक पहले किया जाता है। परिवार के साथ-साथ पड़ोसियों और दोस्तों को आशीर्वाद लेने का मौका दिया जाता है। महत प्रायोजक परिवार के साथ प्राथमिक समारोह का संचालन करते हैं। महंत घर को और प्रायोजक परिवार के प्रत्येक सदस्य को आशीर्वाद देते हैं और प्रत्येक परिवार के सदस्य को गले में एक सूती धागा और कलाई के चारों ओर रक्षा के लिए सूत बांधकर आशीर्वाद देते हैं। परिवार के सदस्य समारोह के बाद धागे को हटा सकते हैं या

उन्हें पहने रख सकते हैं लेकिन उन्हें तब तक शाकाहारी रहना पड़ता है जब तक कि वे स्वाभाविक रूप से गिर न जाएँ। बाद में हवन किया जाता है जिससे परिवार के सदस्यों को आशीर्वाद प्राप्त होता है। परिवार के सदस्यों को उस वर्गाकार क्षेत्र में बैठाया जाता है जहाँ पर हवन लगाई गई है और मेहमानों को इस क्षेत्र के बाहर बैठाया जाता है। हवन के समय परिवार का प्रत्येक सदस्य फूलों की पंखुड़ियों, एक सफेद सूती बैनर, सोने का एक छोटा टुकड़ा और कुछ पूजा संबंधी अन्य वस्तुओं को समर्पित करता है। जैसे ही महंत इस वस्तुओं को यज्ञ बेदी में स्वीकार करते हैं, उन्हें फूलों की पंखुड़ियों द्वारा छिड़क कर आशीर्वाद दिया जाता है।

यज्ञ बेदी पर नारियल की बलि इस चौका धार्मिक समारोह की अंतिम क्रिया होती है। इसके तहत पहले नारियल को महंत द्वारा बेदी के किनारे पटक दिया जाता है, जिससे जोर से चटकने की आवाज आती है और फिर नारियल पानी को मेहमानों के बीच बाँटने के लिए एकत्र किया जाता है। यह नारियल का पहला बलिदान प्रार्थना और अन्य अनुष्ठानिक गतिविधियों के साथ होता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य एक एक नारियल भेंट करता है जिसे प्रार्थना के बिना उसी तरह से तोड़ा जाता है, जिससे नारियल का पानी बेदी और उसके आसपास गिरता है। जब सभी नारियल फोड़ दिए जाते हैं, तब प्रत्येक अतिथि के बीच पवित्र नारियल का पानी प्रसाद के रूपवितरित किया जाता है और सभी को हवन के पवित्र राख का मिश्रण माथे पर लगाया जाता है। परिवार के युवा सदस्य प्रसाद वितरण में सहायता करते हैं। चौका लगभग 10:00 बजे समाप्त होता है। प्रायोजक परिवार के घर के सदस्यों को छोड़कर मेहमान एक-दूसरे के साथ मिलना-जुलना जारी रखते हैं। जो देर से आते हैं या जो फिर से खाना चाहता है, उसके लिए भोजन परोसा जाता है।

कबीर बीजक ज्ञान यज्ञ शायद ही कभी आयोजित किया जाता है। यह अनिवार्य रूप से लगातार छह रातों में आयोजित सत्संगों की एक श्रृंखला है, जिसके दौरान एक विशिष्ट अतिथि महंत कबीर की शिक्षाओं पर प्रवचन देते हैं। समारोह में चौका शामिल हो भी सकता है और नहीं भी। जनवरी 1999 में कबीर चौरा मठ, त्रिनिदाद ने एक कबीर बीजक ज्ञान यज्ञ को आयोजित किया था जिसमें कनाडा और नीदरलैंड के महंतों का त्रिनिदाद आगमन हुआ। कैरेबियन की बगान अर्थव्यवस्थाओं की कठिन परिस्थितियों और कबीर की शिक्षा जिसमें कि मंदिरों की आवश्यकता नहीं है, के बाबजूद त्रिनिदाद में कुछ कबीरी मंदिर बनाए गए हैं। दरअसल, कबीरी पहचान के लिए मंदिर का निर्माण किया गया है। भारत में कबीरी मंदिर मौजूद हैं, लेकिन वे असामान्य हैं। त्रिनिदाद में, लगभग पचास साल से भी पहले फ्रीपोर्ट क्षेत्र में एक मंदिर बनाया गया था। 1996 ईस्वी में सूरीनाम में हिंदू मंदिरों के बावजूद, वहाँ कोई कबीरी मंदिर मौजूद नहीं है। कैरोलिन वी. पैगंबर (2003)

2003 की शुरुआत में त्रिनिदाद में हिंदू मंदिरों के साथ तीन नए कबीरी मंदिर और एक आश्रम बनाया गया था। ऐसा लगता है कि त्रिनिदाद में हाल के हिंदू पुनर्जागरण ने कबीर पंथ को भी प्रभावित किया है। कुछ महंतों का मानना है कि ये नए मंदिर अनुयायियों की वर्तमान संख्या को बनाए रखने में मदद करते हैं। त्रिनिदाद के कबीरी अनुयायियों और कबीरी विद्वानों, भक्तों का मानना है कि समसामयिक दबावों और विदेश में अपनी पहचान को सुरक्षित करने के लिए कबीर की कुछ शिक्षाओं में संशोधन की आवश्यकता है।

पं. आत्माराम विश्वनाथ (1998) की पुस्तक 'हिंदू मोरिशस' के अनुसार मॉरीशस में कबीर से संबंधित कई मंदिर, पंथ और मठ आदि थे। सेवादास द्वारा कबीर बाड़ी, वाकुआ (1922), पिची वेरजे-संपियेर में लोकंदास का बनाया कबीर आश्रम (1921), कबीर धर्म महासभा, कबीर धर्म महासभा, श्री. जीयन सोना, रघुनाथ हुकुम सिंह, स्व. पं. रामावतार महाराज तथा महंत ज्ञानदास के उद्योग से इसका जन्म हुआ है। हंस कबीर मठ देवल, पायोत-कालबोर्न में भी एक कबीर मठ है, जिसकी व्यवस्था उपरोक्त संस्था द्वारा होती है। इसकी रजिस्ट्री 1921 ईस्वी में हुई है। यहाँ के महंत गरीबदास थे। वर्तमान समय में मॉरीशस के कबीर पंथियों के 'कबीरपंथी फेडरेशन' कार्य कर रही है। यह फेडरेशन मॉरीशस के कबीरपंथी लोगों के लिए चौका, आरती, संध्या आरती, सत्संग, झंडी, कबीर ज्ञान यज्ञ जैसे कार्यक्रम का आयोजन करती है। साथ ही कबीर की शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए त्रैमासिक जर्नल 'सत्य गुरु कबीर' का प्रकाशन करती है।

टोरंटो इंक के 'कबीर एसोसिएशन' की स्थापना मार्च 2011 ईस्वी में कनाडा के ओंटारियो में एक चैरिटी गैर-लाभकारी संगठन के रूप में हुई। पिछले कुछ वर्षों में, टोरोंटोनियन समुदाय के कबीर पंथ भक्तों और आध्यात्मिक साधकों के लिए कबीर साहेब की शिक्षाओं में रुचि बढ़ी है। भारत, पाकिस्तान, मॉरीशस, गुयाना, जाम्बिया और त्रिनिदाद और टोबैगो से कबीर साहेब के कई अनुयायी टोरंटो और ग्रेटर टोरंटो क्षेत्र में बसे हैं। एसोसिएशन नियमित रूप से कबीर दास की शिक्षा से संबंधित विभिन्न गतिविधियों का आयोजन, घरों में भजन और सत्संग आदि कराता है। एसोसिएशन कबीरदास की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए 'दिव्य दृष्टी' नामक जर्नल निकालता है। गयाना में जन्में डॉ. जगेस्सर दास 'कबीर एसोसिएशन' के पितामह कहे जाते हैं। जगेस्सर दास गुरु कबीर एसोसिएशन के अध्यक्ष भी रहे हैं। पेशे से चिकित्सक रहने के बावजूद इन्होंने कबीरदास की शिक्षा और दर्शन के प्रचार-प्रसार के लिए कई पुस्तकों का लेखन किया, जिनमें कुछ प्रमुख हैं: *Religious Horizons, Religious Horizons, Sakhis of Guru Kabir, Pictorial Glimpses into the Life of Satguru Kabir Saheb, Bijak of Kabir.*

तोताराम सनाढ्य की 'फ़ीजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' (1972) और ब्रिज. वी. लाल की पुस्तक 'चलो जहाजी' (2012) के अध्ययन से फिजी में हिंदू धर्म एवं कुछ

लोकप्रिय धार्मिक पंथों जैसे– कबीर पंथ, नाथ पंथ, नानक, सतनामी, दादू पथ, जगजीवनदास, रामानंदी और आर्य समाज की जानकारी मिलती है। यहाँ हमारा प्रयोजन कबीर पंथ से है। दिसंबर 1894 में, बाबा ओरिदास ने फ़ीजी के मणिपातु में कबीर पंथ अखाड़े की स्थापना की। उन्होंने इस संप्रदाय में लगभग 200 समर्पित शिष्यों को दीक्षा दी। ओरिदास, पुलिस विभाग का कर्मचारी था। धीरे–धीरे उनके भक्तों की संख्या बढ़कर एक हजार हो गई। इस स्थान पर हर पखवाड़े भजन और प्रार्थना सभाएँ होती थीं। अंत में, वह अपने सबसे प्रिय शिष्य बाबा दल भजन दास को अपना संप्रदाय सौंप कर भारत लौट गए। दल भंजन दास ने अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया, लेकिन उनके पास ओरिदास के जैसी समझ और प्रभाव की कमी थी। मार्च 1898 में, बाबा भाग्गादास फ़ीजी पहुँचे और रेवा के दावुइलेवु में बस गए। ओरिदास के अधिकांश पूर्व शिष्य और कुछ अन्य उसके साथ जुड़ गए। दावुइलेवु में हर कोई उनका शिष्य बन गया। इस तरह उनका अखाड़ा काफी लोकप्रिय हुआ। उनके शिष्यों ने 400 रुपये एकत्र किए और उनके लिए एक कुटी बनाई। हर पूर्णमासी को फ़ीजी भारतीय लोग वहाँ दावत और उत्सव के लिए इकट्ठा होते थे। पिंगलदास और सीतावदास, भाग्गादास के प्रिय शिष्य थे। सीतावदास ने शिष्यों को पढ़ाया, समझाया जबकि पिंगलदास ने अपने गुरु की देखभाल की। सीतावदास के बाद, पिंगलदास ने उनका स्थान लिया। बाबा भाग्गादास संप्रदाय बहुत लोकप्रिय हुआ। बाबा का आशीर्वाद लेने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। हर शाम, कुटी में भजन गाया जाता था, साथ में झांझ, ड्रम और ऐसे अन्य उपकरण बजाए जाते। विशेष रूप से पूर्णमासी पर भारी भीड़ उमड़ती। भांग के साथ मिश्रित तंबाकू का बड़ा भंडार भी रखा गया था। पिंगलदास ने बाद में सुवा में अपनी कुटी का निर्माण किया। (सनाढ्य, तोताराम, 1972, लाल, ब्रिज.वी, 2012, पृष्ठ. 247–248)

वर्तमान समय में कबीर पंथी भी मंदिर निर्माण कर रहें हैं क्योंकि इनका मानना है कि ये नए मंदिर अनुयायियों की संख्या को बनाए रखने में मदद करते हैं। कबीर पंथ में समय के दबाब और जरूरत के अनुसार कई शाखाएँ निर्मित हो गयी है। कबीर की मूल शिक्षा और स्थानीयता के आधार पर चलने वाले कबीर पंथी अपने को धरमदास की परंपरा को मानते हैं जबकि सुधारवादी कबीर पंथी समसामयिक माँगों और वैश्विक पहचान के लिए कबीर की कुछ शिक्षाओं में संशोधन की आवश्यकता पर बल देते हैं। इस सुधारवादी कबीर पंथ के नेतृत्व कर्ता कबीरचौरा, लहरतारा, बनारस शाखा के महत विवेकान्द हैं। इन्होंने चौका अनुष्ठान को समाप्त करने की बात कही है क्योंकि यह कबीर की मूल शिक्षा पर आधारित नहीं है। कबीर पंथ में समय की समयानुसार सुधार करने की आवश्यकता है ताकि कबीर दास के अनुयायी देश–विदेश में अपनी पहचान को बनाये रखते हुए समाज के मार्गदर्शक बन सकें।

संदर्भः

1. स्नातक, विजयेन्द्र, (1965), कबीर नई दिल्ली राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
2. ब्रह्मचारी, रामाश्रय दास. (2003), संत कबीर और उनका दर्शन नयी दिल्लीः प्रकाशन संस्थान,
3. बाठ, सुखविंदर कौर (2007), कबीर का लोकतात्विक चिंतन नयी दिल्ली वाणी प्रकाशन,
4. *Clifford. James (1992) Traveling Cultures. In Cultural Studies. Lawrence Grasberg, Cary Nelson, and Paula Trencher, eds. Pp. 96-116. New York: Rutledge.*
5. *Bhatia Tej. K. (2001)) Media, Identity and Diasprora: Indians Abroad Diaspora, Identity and Language Communities Studies in the Linguistic Sciences 31:1. Spring.*
6. *Vertovec, Steven. (1992). Hindu Trinidad. London: Macmillan Caribbean*
7. *......(2000). The Hindu Diaspora. Comparative Patterns. London: Routledge.*
8. *Ramsurrun, Prahlad. (2013) Hindu Mauritius. New Delhi: Star Publication Pvt. Ltd.*
9. *Cohen, Robin. (2008). Global Diasporas: An introduction. p-117. New York: Rutledge.*
10. लाल, ब्रिज.वी. (2012), चलोजजाजी, कैनबराः ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी,
11. Carolyn, V. Prorok. (2012). in Case, F.I., & Taylor, P. The Encyclopedia of Caribbean Religions: Volume 1: A - L; Volume 2: M- Z. Champaign: University of Illinois Press.
12. Mahapatra, S. (2003). Chhattisgarh ke adivasiyon ke Beej Samanya Jan Ka Masiya Kabir Retrieved on October 10, 2010 from http://tdil.mit.gov.in/coilne t/ignca/kabir026.htm

13. Vivekdas (2003). Ghat ka Chauka. Varanasi: Kabirvani Prakasan Kendra.

14. Risley, H.H. & Gait, E.A. (1903). Report on the census of India 1901. Calcutta: Superintendentof Government Printing.

15. Singh, Gurharpal. (2003). "Introduction." In Bhikhu Parekh, Gurharpal Singh and Steven Vertovec (eds), Culture and Economy in the India Diaspora. Routledge: London.

16. Comins, D. W. D. (1893). Note on Emigration from India to Trinidad. Calcutta: Bengal Secretariat Press.

17. Heeraman, Joyce D. (1972). "The Kabir Panth in Trinidad." Caribbean Studies Project No01149. Saint Augustine, Trinidad and Tobago:University of the West Indies.

18. Kabir Panth Association. (1993). 60th Anniversary Commemoration. Trinidad and Tobago: Kabir Panth Association.

❑❑

श्री राम से सूरीनाम गिरमिटिया

ऋतु शर्मा नंनन पांडे

सूरीनाम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः

सूरी नाम अधिकारिक तौर पर अब सूरीनाम गणराज्य, दक्षिण अमेरिका महाद्वीप के उत्तर में स्थित एक देश है। सूरीनाम पूर्व में फ्रैंच गुयाना और पश्चिमी गयाना स्थित है। इस देश की दक्षिणी सीमा ब्राज़ील और उत्तरी सीमा अंध महासागर से मिलती है। सूरीनाम दक्षिण अमेरिका का क्षेत्रफल और जनसंख्या के हिसाब से सबसे छोटा संप्रभु देश है। इसकी राजधानी पॉरामॉरिबो है। यह पश्चिमी गोलाद्‌र्ध पर एकमात्र डच भाषी क्षेत्र है जो पहले नीदरलैंड के राजशाही का हिस्सा था। 25 नवंबर, 1975 को नीदरलैंड से स्वतंत्र होने के बाद से यह स्वतंत्र गणराज्य है। सूरीनाम का समाज बहुसांस तिक है, जिसमें अलग-अलग जाति, भाषा और धर्म के लोग निवास करते हैं। यहाँ सरनांगं टोंगो (जो अफ्रीकी समुदाय की मूल भाषा है) अंग्रेजी, यावा (जो यावा द्‌वीप के लोगों द्‌वारा बोली जाती है) इंडोनेशिया, अवधि, भोजपुरी, होक्का, व चीनी भाषा मान्यता प्राप्त भाषाएँ हैं। इसके अतिरिक्त क्रियोल भाषा आम बोलचाल की भाषा है।

गिरमिटिया अप्रवासनः

भारतीय इतिहास में 18वीं शताब्दी बहुत महत्वपूर्ण रही। उस समय जहाँ मुग़ल साम्राज्य का विघटन हो रहा था तथा भारतीय उपमहाद्‌वीप में कई क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना हो रही थी। यह समय यूरोपीय कंपनियों के आगमन तथा यूरोपीय व्यापार के विस्तार का भी काल था। इसी बीच गांधी जी व अन्य आंदोलनात्मक गतिविधियों के चलते दास प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा समाप्त हो गई। अंग्रेजी सरकार व सभी औपनिवेशिक देशों को लगने लगा की जो देश या लोग दास प्रथा से मुक्त हो गए हैं, वह कल अपनी एक नई पहचान बना कर हमारे समक्ष न खड़े हो जाए। दास प्रथा के समाप्त होने के कारण उनको आर्थिक नुकसान के साथ-साथ कामगारों की कमी भी उठाने पड़ रही थी। उन्होंने दास प्रथा को दूसरे नाम से लोगों के समक्ष रखा और वह था कॉन्ट्रैक्ट या अनुबंधित कार्यकर्ता। ब्रिटिश सरकार जो उस

समय भारत की सर्वेसर्वा थी उसने डच सरकार से एक संधि की जिसके अनुसार ब्रिटिश सरकार डच देश को भारतीय किसानों को पाँच वर्ष के लिए उनके खेतों में काम करने के लिए सूरीनाम दक्षिण लैटिन अमेरिका का एक देश जो डच शासकों का देश था, वहाँ भेजेगी। सूरीनाम में भारतीय किसानों के जाने से पहले ही वहाँ पश्चिमी मध्य अफ़्रीका से दास बना कर लाए गए थे जो गन्ने के खेतों व चीनी मिलों में काम करते थे। इनकी प्रमुख दो जातियाँ क्रियोल व मारून जिन्हें बोस नेखर यानी आदिवासी समुदाय कहा जाता था आज भी सूरीनाम में है, वह वहाँ निवास करते थे। भारत से पहले डच सरकार ने चीन, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि देशों में भी इस तरह की संधि के प्रस्ताव रखे थे। किंतु जब वहाँ सफलता हाथ नहीं लगीं तो उन्होंने भारत को अपना निशाना बनाया। उस समय भारत भी आर्थिक संकट से गुजर रहा था। अंग्रेजी सरकार ने भारत को पहले ही धर्म और जाति के नाम पर बाँट रखा था ज्यादातर किसानों की जमीन समय पर लगान न भरने के कारण अंग्रेजी सरकार के पास चली गई थी। रजवाड़ों की आर्थिक स्थिति भी कुछ ज्यादा सुदृढ़ नहीं बची थी। बाढ़ व सूखे की मार अलग थी। बाकी जो खजाने में बचा था उसे भी यह लूट कर अंग्रेजी सरकार इंग्लैंड पहुँचा चुकी थी। देश की हालत बहुत खराब हो गई थी ऐसे में 1873 से लेकर 1914 तक डच सरकार से भारत में खेतों व बागानो में काम करने व उनका अपना खेत अपनी ज़मीन पाने का प्रलोभन पा कर कुछ लोग अपनी स्थिति व भविष्य सुधारने के लिए झटपट इस आमंत्रण को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए। क्योंकि उस समय अपनी खुद की जमीन व खुद का खेत होना लगभग हर भारतीय किसान का सपना सा बन गया था। कुछ लोगों को "श्री राम के देश" ले जाने के नाम पर भरमा कर ले जाया गया। इस काम को करने के लिए ब्रिटिश और डच सरकार ने भारतीय एजेंटों का सहारा लिया। 26 फरवरी को कलकत्ता के बंदरगाह से पहला पानी का जहाज लाला रूख सूरीनाम के लिए रवाना हुआ। उस समय सूरीनाम जाने के लिए भारतीय किसानों व हस्त कलाकारों को ही प्राथमिकता दी गई। इन यात्रियों को अपने साथ उनके धार्मिक प्रतीक मूर्तियाँ, पुस्तकें, रामायण, गीता, महाभारत, कुरानआदी ले जाने की छूट थी। कुछ किसान लोगों को पता था कि वह पाँच साल के लिए जा रहे हैं इसलिए वह अपने साथ खेती का कुछ सामान बीज व अन्य ज़रूरी सामान भी ले गए थे। जिन लोगों को संगीत का शौक़ था वह अपने साथ कुछ साज भी ले गए।

सूरीनाम आगमनः सूरीनाम पहुँचने वालों में जो पहले पति पत्नी वहाँ गये उनका नाम गया और बुद्धिय था। जहाज में जाने वाले कामगार स्वस्थ व बलशाली किसान पुरुष या अकेली महिलायें और लड़कियाँ ही ले जाई गई थी। उनको सूरीनाम ले जाने से पहले उनका उनका पूरा स्वास्थ्य निरीक्षण किया गया था। सूरीनाम जाने वालों में भारत की सभी जाति व धर्मों के लोग थे। उस समय सभी अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों, से परेशान थे।

5 जून, 1873 को जब लाला रूख पानी का जहाज सूरीनाम पहुँचा और भारतीयों ने वहाँ की जमीन पर पैर रखा तो पता लगा "यहाँ तो श्री राम का गाँव तो क्या कोई साधारण गाँव

भी नहीं है। चारों ओर घने जंगल, भयानक जहरीले जानवर दलदल और पानी ही पानी था। भारतीयों को पता लग गया था कि उनके साथ धोखा हुआ है और अब उन्हें यह भी पता लग लगाय था कि अब उनके पास यहाँ रहने के अलावा दूसरा कोई विकल्प भी नहीं है। क्योंकि वहाँ से भारत आने का एक ही विकल्प था" पानी का जहाज 'और उस पर डच शासन कर्ताओं का अधिकार था। न्यू ऐम्सटर्डम डिपो से भारतीयों को सूरीनाम के विभिन्न बगानों, खेतों में काम करने के लिए करार पत्र मिला। जो भारतीय वहाँ गए उन्हें काम के अंनुबंधन पत्र के साथ साथ डच नागरिकता भी प्रदान की गई। अनुबंध पत्र में भारतीय कामगारों का नाम, लिंग धर्म, पता, जाति, जिला, विवाहित, अविवाहित, बच्चे, बिना बच्चे व किस एजेंट द्वारा किस जहाज से किस बंदरगाह से किस दिन सूरीनाम आये व किस बागान मालिक के पास काम करना है सब लिखा था। इस करार पत्र में काम करने की शर्तें, नियम व आय के बारे में भी जानकारी थी। इन शर्तों में कुछ शर्तें इस प्रकार थी।

1. यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी या बच्चों सहित सूरीनाम आया है तो पूरा परिवार एक ही बागान में काम करेंगे, उन्हें अलग नही किया जाएगा।
2. पुरुर्षों को 60 पैसे प्रतिदिन, महिलाओं को 40 पैसे प्रतिदिन व बारह साल से उप्र के बच्चों को 4 आने प्रतिदिन के हिसाब से मेहनताना मिलेगा।
3. वेतन प्रति दिन, प्रति सप्ताह व प्रति माह के हिसाब से दिया जा सकता है।
4. काम समय पर पूरा न होने पर कर्मचारी को अपराधी जान जेल की सजा सुनाई जाएगी, या कड़ी सजा भी दी जा सकती है।
5. यदि कोई महिला कर्मचारी अपना काम पर नहीं कर पाती तो उसे उसके परिजनों से दूर दूसरे बागान में काम करना होगा।

इन शतो ं में से कुछ का पालन तो किया गया पर तय किये गये वेतन के अनुसार कभी पैसे नहीं मिले पर सजा के नियमों का कड़ा पालन किया गया। असहाय भारतीय कर्मचारी दिन रात घुटनों तक के पानी में जहरीले जानवरों से कटवाते और धान बोते। कुछ लोग इस काम को इस लिये भी करते थे क्योंकि उन्हें डर था कि यदि वह काम नहीं करेंगे तो उनको नौकरी से निकाला जा सकता है या कड़ी सजा भी मिल सकती है।

गिरमिटिया स्त्रियों की स्थिति: वैसे तो गिरमिटिया कामगारों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। किंतु उस समय भी भारतीय गिरमिटिया स्त्रियों की स्थिति अफ़्रीकन व अन्य देशों जैसे अफ़्रीका, चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया से आई महिलाओं से बहुत अच्छी थी। अफ़्रीकी महिलाओं व युवतियों को डच अधिकारियों के भोग की वस्तु बनना पड़ता था। पुरुषों को बहुत कठिन काम करने पड़ते थे, विभिन्न तरीकों से उनका शोषण किया जाता

था। भारतीय श्रमिकों के साथ ऐसा नहीं था। उन्हें अन्य श्रमिकों से अलग रखा गया था। भारतीय श्रमिकों में पुरुषों की संख्या स्त्रियों की संख्या से अधिक थी। इसलिए एक स्त्री दो पुरुषों के साथ विवाह कर सकती थी। स्त्रियाँ अपने विवाह के लिए अपनी पसंद के पुरुष के चुनाव के लिए स्वतंत्र थीं। वह पुरुषों से अधिक काम करती थीं। वह घर परिवार व खेतों में काम करने के साथ-साथ बाहर बाजार में सब्जी, फल, दूध आदि बेचने का भी काम करती थी। इसलिए पुरुष उनसे विवाह करने के लिए स्वर्ण आभूषण व पैसों का प्रलोभन भी देते थे। उनकी आर्थिक स्थिति भी बहुत मजबूत थी। बहुत सी स्त्रियों ने उस समय बीमारी या अन्य किसी कारण से मृत्यु को प्राप्त होने वाली औरतों के बच्चों की माँ बनना भी सहर्ष स्वीकार किया। इस तरह भी उन्होंने दो परिवारों को एक बनाकर रखा। जो भारतीय श्रमिक यहाँ से सूरीनाम गये वह सब मिलकर एक साथ रहे। जातिगत भेदभाव वहाँ समाप्त हो गया। स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कम होने के कारण भारत से गए विभिन्न जाति संप्रदाय के लोगों ने वहाँ सिर्फ एक धर्म भारतीय हिंदुस्तानी को प्राथमिकता दी और डच व अन्य देशों के लोगों से विवाह संबंध बनाने के बजाए आपस में विवाह संबंध बनाना उचित समझा। आज भी सूरीनाम में बहुत से परिवार में दादी हिंदु व दादा मुस्लिम समुदाय के मिल जाएँगे। किंतु घर में ईद व दिवाली दोनों समान रूप से मनाते है। पुरुषों के समानांतर स्त्रियों अधिक सम्मानित स्थान पर थी।

धर्म और सस्कृति की रक्षाः वह समय बहुत ही कष्ट का समय था। इन कष्ट के दिनों में जो उस समय उनका सहारा बना वो था उनका आपसी भाईचारा और भारत से साथ ले गए धार्मिक ग्रंथ, भजन, कीर्तन, कहानियाँ। यही उनकी सच्ची पूँजी भी थी जिसे उनसे कोई छिन नहीं सकता था। उनकी अपनी भाषा, उनके अपने संस्कार जो उनके अपने थे। जिन्हें डच सरकार चाह कर भी बदल नहीं सकते थी। दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद जब वह थके हारे अपने घर लौटते तो अपने संगी साथियों के साथ मिलकर चौपाल पर इकट्ठा होकर अपने देश के किस्से कहानी, गीत, रामायण की चौपाई, चौताल, हातिमताई के किस्से कहानी सुनते-सुनाते और संगीत का आनंद लेते। इन्हीं संस्कार व संस्कृति को अपनी शक्ति बनाकर प्रवासी भारतीयों ने वहाँ एक नये भारत की नींव रखीं। अपने घर आँगन में ही मंदिर, मस्जिद बनाए। हालाँकि वहाँ डच सरकार द्वारा बच्चों को स्कूलों में पढ़ाए जानने का प्रावधान भी था, किंतु अधिकांश भारतीयों को यह डर था कि मिशनरियों के स्कूल में बच्चों को पढ़ने भेजेंगे तो वह ईसाई बन जाएँगे और यह बात सच भी थी। उस समय जब कोई बच्चा जन्म लेता था तो जन्म के समय मदद करनी वाली मिशनरी नर्स या डाक्टर द्वारा बच्चे को पहला ईसाई नाम ही दिया जाता था। इसलिए उस समय बच्चों के दो या तीन नाम रखें जाते थे। पहला नाम डच दूसरा और तीसरा हिंदुस्तानी या मुस्लिम नाम होता था जैसे "इलस लीलावती, मॉरिन सरिता इसी लड़कों के नाम भी रोब रामचरन, यान भैरव, क्रिस

जानकी प्रसाद, मुस्लिम नाम भी इसी प्रकार थे सासकीया रायदा अमानउलला, अलबरट हारून नसीब खान। डच लोगों ने भारतीयों को पढ़ने-पढ़ाने की स्वतंत्रता प्रदान की थी। डच स्कूलों में मिशनरी ननो व डच शिक्षकों द्वारा डच व अंग्रेजी भाषा की शिक्षा दी जाती थी। सूरीनाम में डच लोगों के नियमों के अनुसार ही सारे कार्य किये जा रहे थे। भारतीयों लोगों को लगा। यदि हमारे बच्चे मिशनरी या डच स्कूल में जाएँगे तो उन्हें डच भाषा के साथ-साथ डच लोगों के ईसाई धर्म का भी पालन करना होगा ? इस बात से यह संभावना काफी बढ़ गई थी कि शायद हमारे बच्चे हमारी भाषा, धर्म व संस्कृति को भूल कर ईसाई न बन जाएँ। इन विपरीत परिस्थितियों में अपनी संस्कृति, धर्म व भाषा को बचाना एक बड़ा प्रश्न बनकर उनके सामने खड़ा था। इसके निवारण के लिए उन्होंने जिन भारतीयों को पढ़ना लिखना आता था उन्होंने अपने घरों में ही बच्चों को हिंदी भाषा की शिक्षा देनी आरंभ कर दी, साथ ही इस बात का नियम भी बनाया की घर में सभी भारतीय बात करने के लिए अपनी मातृभाषा का ही प्रयोग करेंगे। अपने संस्कार त्यौहार व धर्म का पूरी तरह से पालन किया जाएगा। गुप्त पंचायत भी इसी का एक हिस्सा बनी। 1937 के बाद वहाँ सनातन धर्म महासभा का निर्माण किया गया जहाँ भारत से गए पंडित मंदिर में रामायण, पाठ द्वारा देवनागरी लिपि की शिक्षा देते थे। इसके बाद सनातन भजन कीर्तन मंडली भी बनी जिसका कार्य भी भारतीय संस्कृति और भाषा का प्रचार-प्रसार करना था। जब भी किसी के घर विवाह व अन्य महत्वपूर्ण संस्कार किए जाते सभी प्रवासी भारतीय उसे पारंपरिक गीतों, रीती रिवाजों से संपंन किया जाता ताकि अगली पीढ़ी तक परंपरा पहुँच सके। जिसका पालन वह आज तक कर रहे हैं।

हिंदी भाषा की पहचान सरनामी हिंदीः सूरीनाम जाने वाले श्रमिक भारत के विभिन्न भागों से ले जाए गए थे। जहाँ अलग-अलग प्रांतों की अपनी अलग-अलग बोली व भाषा थी जैसे भोजपुरी, मगही, मैथिली, अवधी, ब्रज तथा अन्य भाषाएँ। इन सभी भाषाओं को कालांतर में एक बोल चाल के माध्यम से एक सरल रूप दिया गया जिसका नाम पड़ा "सरनामी हिंदी"। सरनामी हिंदी भोजपुरी भाषा के बहुत पास की भाषा जान पड़ता है। सूरीनाम प्रवास के समय हिंदी लिखने पढ़ने की कोई सुविधा नहीं थी। आपस में बात करते हुए किस्से कहानियों को बताते हुए, बच्चों को लोरी गीत, रामायण की चौपाई सुनते-सुनाते मौखिक रूप में हिंदी जीवित रही। कुछ वर्षों बाद मुंशी रहमान खान ने अपने अनुभवों को अपने पत्रों द्वारा व दैनिक डायरी में गीत चौपाई व दोहें लिखे गए। प्रकाशन की व्यवस्था न होने के कारण वह हस्तलिखित पुस्तकों द्वारा संरक्षित किए गए। इसी वर्ष मुंशी रहमान खान के इन पत्रों को पुस्तक के रूप में डच भाषा में सूरीनाम व नीदरलैंड में प्रकाशित किया गया है।

1947 में भारत के स्वतंत्रत होने के बाद सूरीनाम के जो भारतीय थोड़े समृद्ध भारतीय थे, उन्होंने फिर से भारत से जुड़े रहने का फैसला कर अपने बच्चों को आगे की

शिक्षा पूरी करने के लिए भारत व नीदरलैंड पढ़ने के लिए भेजा। 1950 में भारत से अपनी डॉक्टर की शिक्षा पूर्ण करने के बाद सूरीनाम लोटे एक प्रवासी भारतीय डॉक्टर राज नारायण नंनन पांडे उस समय डच सरकार में संस्कृति मंत्री बने। उन्होंने उस समय वहाँ "हिंदू महासभा परिषद" की स्थापना कर भारतीयों और भारतीय संस्कृति को बढ़ाने में सहायता की। उन्होंने वह लगभग पचास वर्षों तक इस संस्था के महासचिव के पद पर नियुक्त रहे। इन वर्षों में उन्होंने भारतीय पढ़े लिखे लोगों को भारतीय 25 नवंबर, 1975 में जब सूरीनाम डच शासन से स्वतंत्रत हो गया तब वहाँ के प्रवासियों को नीदरलैंड आने की अनुमति दी गई। उस समय बहुत सारे लोग खेती व कारखाने का काम छोड़ कर अपने स्वतंत्र व उज्ज्वल भविष्य की कामनाओं के साथ नीदरलैंड आ गये। जो भारतीय वहाँ रह गये थे जब उन्हें वहाँ की सरकार से हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए कोई समर्थन नहीं मिला व हिंदी भाषा को सूरीनाम की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता नहीं मिली तब उन्होंने 1978 में हिंदी पढ़ाने के लिए एक संस्था "सूरीनाम हिंदी परिषद का गठन किया। जिसका पाठ्यक्रम भारत के वर्धा विश्व विद्यालय के साथ मिलकर तैयार किया गया। बाद में भारतीय सिनेमा के वहाँ जाने से हिंदी भाषा में और सुधार हुआ। भारतीयों ने मिलकर वहाँ अपना रेडियो कार्यक्रम शुरू किया, जिसमें भारत व विदेशों के समाचारों के साथ–साथ बच्चों व बड़ों के मनोरंजन के कार्यक्रम शुरू किए।

1. सरनामी हिंदी भाषा में आज भी माँ–बाप, भाभी, चाची–चाचा, चाचा–चाची, दादा–बकरी, सास, बहू, बहू जैसे शब्द प्रचलित हैं। कानून, बहू, बहू, बहू, बहू यह आपको सुनने को मिलेगा।
2. त्योहार के नाम – फगुआ, दीवाली, राखी,
3. विवाह में होने वाली रस्मों के नाम दुल्हा, दुल्हन, मटकौडवा, दुआर पूजन, दुल्हा परछाई, तिलक, मरुआ, बरिआत, जनवास, खौबर, माँड़ो,
4. दैनिक बोल चाल में उपयोग वाले शब्द भात, मीठा भात, रोटी, चौखा, कटहर, लेहसून, पियाज, मोहन भोग (सूजी का हलवा) कोहरा, सील लोहरा, पिसान (आटा) दाल, छाने, कूटे, छौंक, भूजै, चिह्ने (जानना) खरिया, लोटा, रामायन, दोगला आदि शब्द आज भी प्रयोग किए जाते हैं।

स्वतंत्र पहचानः भारत के लोग जहाँ भी गए उन्होंने वहाँ अपनी एक अलग पहचान के साथ एक नये भारत का निर्माण किया। इसके पीछे भारतीयों की "वसुधैव कुटुंबकम" की भावना की गहरी भूमिका रही है। एक और जहाँ सूरीनाम में प्रवासी भारतीय ने अपनी लगन, मेहनत व ईमानदारी के साथ विशेष पहचान स्थापित की है, वहीं स्थानीय समाज, देश की बेहतरी में भी बहुत योगदान दिया है। आज सूरीनाम में गिरमिटिया श्रमिक सूरीनाम की

अर्थव्यवस्था से लेकर सरकार तक चला रहे हैं। इसका उदाहरण सूरीनाम के वर्तमान राष्ट्रपति श्रीमान चाँद संतोखी है। भारत सरकार द्वारा गिरमिटिया भारत वंशियों के लिए ओ सी आई की सुविधा से भारत और सूरीनाम को फिर से मिला दिया है।

सूरीनाम अप्रवासी दिवस के 150 साल पूरे होने पर जून महीने में यह उत्सव मनाया गया भारत की राष्ट्रपति श्रीमती मुरमुक भी इस सूरीनाम की विशेष अतिथि बनी। भारतीय प्रवासियों गिरमिटिया पर शोध कार्य किया जाता है। प्रवासी गिरमिटिया की कहानियाँ सुन कर पढ़ कर उन्हें अपने शब्दों में ढाल कर अपने नाम से बड़े बड़े शोधव पुस्तकें लिखी जाती है, किंतु, उनके बारे में कहीं पढ़ाया नहीं जाता। भारत की इतिहास की पुस्तकों से आज भी यह गौरवशाली पन्ना गायब है। यह बहुत ही दु:खद सत्य है। मुझे आशा है कि मेरे इस लेख दवारा सूरीनाम व नीदरलैंड में हम सूरीनाम प्रवासियों पर भी भारत सरकार की दृष्टि पड़ेगी।

❑❑

वृद्धावस्था में जीवन और जीवन दृष्टि: प्रवास से अर्चना पैन्यूली के तीन उपन्यास

विजया सती

हिंदी साहित्य में दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, किन्नर-विमर्श (थर्ड जेंडर विमर्श) के बाद अब वृद्ध-विमर्श का स्वर भी सुना जा रहा है, भारत जैसे देश में हम श्रवण कुमार की वृद्ध माता-पिता के प्रति एकाग्र निष्ठा की कहानी सुनते हुए बड़े हुए है, किंतु आज प्राथमिकताएँ बदल रही हैं, कामकाजी जीवन में समयाभाव का रोना है, परिवार एकल हो रहे हैं, आज के जागरूक समय में बेहतर जीवन स्तर और सुविधाओं ने विकसित देशों में तो मानव जीवन को लंबी आयु प्रदान की ही है, विकासशील देश भी इस दौड़ में पिछड़ते नजर नहीं आते, परिवर्तन के इस दौर में, परंपरा से स्वीकृत मूल्यों के बावजूद, समाज और परिवार के बीच वृद्ध जीवन को लेकर उठते तमाम सवालों से इनकार नहीं किया जा सकता, वृद्धाश्रम की नवीन अवधारणा अपनी जड़ें जमाने लगी है, सीनियर सिटीजंस होम, सीनियर ट्रैवलिंग, हैल्दी एजिंग से लेकर सीनियर लिविंग तक कई विकल्प आज मौजूद हैं, ये विकल्प लुभाते भी हैं और भरमाते भी हैं।

क्या हम वृद्ध जीवन को रूखे उलझे सफेद बाल, झड़े हुए दाँत, निर्बल देह में जीवन की साँझ कह कर ही परिभाषित करना चाहेंगे? क्या अनुभव संपन्न दृष्टि और मनो ऊर्जा से इसका कोई नाता न रखेंगे? वृद्धावस्था जीवन की नैसर्गिक परिणति है, जिसके प्रति एक दृष्टि का पता पाश्चात्य कवि रॉबर्ट ब्राउनिंग की यह पंक्तियाँ भी देती हैं-

Grow old along with me, the best is yet to be
The last of life for whichthe first wos made!

कहना गलत न होगा कि जैसे ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है, वैसे ही अनुभवों की विविधता का खजाना वृद्धावस्था भी है। जीवन के इस महत्वपूर्ण पहलू पर परस्पर विरोधी विचार सूत्र निश्चित रूप से मिलेंगे। भारतीय जीवन पद्धति और दृष्टि के समकक्ष जब परदेश के जीवन की छवियाँ हों तब निश्चित ही बहुत रोचक निष्कर्ष सामने

होंगे, वृद्धावस्था में जीवन और जीवन दृष्टि को विश्लेषित करने के क्रम में, हिंदी साहित्य को आधार बनाकर लिखे जा रहे इस आलेख में भारत से बाहर प्रवास में रहकर लिखी गई तीन प्रमुख कृतियों को ही केंद्र में रखा गया है।

नई पीढ़ी की कथाकार अर्चना पैन्यूली ने हिंदी को अपने सृजनात्मक प्रयासों से समृद्ध किया है। वे भारत से बाहर स्कैंडिनेविया प्रायद्वीप में उत्तरी यूरोप के देश डेनमार्क में रहकर, हिंदी भाषा में अपना लेखन करती हैं। प्रवास में रचे गए उनके तीन प्रमुख उपन्यास प्रवास में वृद्धों की दुनिया का बहुरंगी साक्षात्कार कराते हैं।

अर्चना पैन्यूली मूल रूप से उत्तराखंड के देहरादून शहर से हैं। उनका जन्म 17 मई 1963 में कानपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। आरंभिक जीवन देहरादून में बीता। उन्होंने गढ़वाल विश्वविद्यालय से एम.एस.सी. (Master's in Science) किया। विवाह के बाद 1988 में वे पति के साथ मुंबई गई और वहाँ नौ वर्ष तक (1988–1997) माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापन करती रही। सितंबर 1997 से वे डेनमार्क में हैं और पिछले कई वर्षों से कोपेनहेगेन में इंटरनेशनल स्कूल में विज्ञान विषय पढ़ा रही हैं।

अर्चना पैन्यूली के चार उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 2003 में उनका पहला उपन्यास 'परिवर्तन' प्रकाशित हुआ, यह भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित है, भारत में रहकर लिखा गया है और पर्वतीय अंचल के पारिवारिक सामाजिक जीवन को परत–दर–परत खोलता है। 2010 में उनका दूसरा उपन्यास 'वेयर डू आई बिलांग' आया, जिसका अंग्रेजी रूपांतर 2014 में रूपा पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित हुआ। 2016 में अर्चना का तीसरा उपन्यास 'पॉल की तीर्थयात्रा' प्रकाशित हुआ, 2020 में उनका नवीनतम चौथा उपन्यास 'कैराली मसाज पार्लर' भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ। लेखिका ने सुप्रसिद्ध डेनिश लेखिका केरेन ब्लिक्शन की रचनाओं का हिंदी अनुवाद भी किया है। 2021 में अर्चना द्वारा अनूदित डेनिश लेखिका हेल्ले–हेल्ले की पुरस्कृत कृति 'आज की बात करें' आई है।

2017 में अर्चना का पहला कहानी संग्रह 'हाइवे E47' ज्ञान गंगा प्रकाशन से आया, जिसमें विविध संदर्भों की 12 कहानियाँ हैं। 2019 में 'कितनी मांएँ हैं मेरी' शीर्षक दूसरा कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। हिंदी की विशिष्ट पत्र–पत्रिकाओं हंस, कथादेश, वागर्थ, गगनांचल, पाखी, कथा बिंब आदि में उनकी कहानियाँ, विविध विषयों पर लेख और साक्षात्कार निरंतर प्रकाशित होते रहे हैं।

अर्चना पैन्यूली का अधिकांश लेखन यद्यपि स्त्री केंद्रित कहा जा सकता है। तब भी स्त्री, परिवार और समाज के अभिन्न अंग वृद्ध जीवन के माध्यम से भी समय और समाज को समझने की कोशिश उनके लेखन में दिखाई देती है। वैश्विक स्तर पर, वृद्ध जीवन की परिस्थिति, उसके स्वप्न, उसकी महत्वाकांक्षाओं और उसके अस्तित्व को

रेखांकित करने के उपक्रम में, उनकी कथा-कृतियों के वृद्ध पात्र भारत और अन्य देशों में वृद्ध जीवन के अनुभव संसार को सम्मुख रखते हैं। भारतीय और विशेषत: यूरोपीय देशों में वृद्ध जीवन प्रसंगों का तुलनात्मक रूप भी उनकी कृतियों में उभर कर सामने आता है। अर्चना पैन्यूली के उपन्यासों को केंद्र में रखकर प्रवासी साहित्य में वृद्धों के अनुभव संसार को रेखांकित करना एक सार्थक प्रयास प्रतीत होता है।

प्रवास में रची विशिष्ट कृति : वेअर डू आई बिलांग[1]

डेनमार्क प्रवास में रचा गया अर्चना पैन्यूली का पहला उपन्यास 'वेअर डू आई बिलांग' है। उपन्यास अपने देश और फिर विदेश में बीते जीवन से उपलब्ध अनेकरंगी अनुभवों की कथा कहता है। अड़तीस अध्यायों के बाद उपसंहार के साथ प्रस्तुत यह उपन्यास बहुत-सी घटनाओं और पात्रों को लेकर चला है। अधिकांश पात्रों का संबंध एक परिवार से है। यह है गोविन्द प्रकाश शांडिल्य और उनकी पत्नी कमला का परिवार, परिवार के मुखिया श्री शांडिल्य, अपनी पत्नी सहित वृद्धावस्था की दहलीज को छू रहे हैं। वे कई वर्ष पहले पैसा कमाने के इरादे से विदेश के लिए निकले, पानीपत से कोपेनहेगेन विस्थापित हुए। पहले उन्होंने अपना देश छोड़ा, फिर नागरिकता छोड़ी, पर जो चीज ताउम्र न छोड़ी, वह थी अपनी देशी संस्कृति व परंपराएँ, डेनमार्क में रहते हुए उन्हें इस देश की उस संस्कृति से दहशत होती है, जो अत्यधिक स्वच्छंद है। जीवन में खर्च करने को पैसा और मनोरंजन की फुर्सत जब हुई तब पारिवारिक उथल-पुथल के बीच उन्होंने जाना कि इस देश में उन्होंने कमाया जरूर पर काफी कुछ गंवाया भी है। सबसे बड़ी कमाई उनका वह एकांत था जो विवाह के बाद बच्चों के अपना अलग घरौंदा बनाने से उन्हें हासिल हुआ था। घर में अकेले बैठे वे अपने बच्चों की आगामी मुलाकात का इंतजार करते। अब वे बूढ़े थे, रिटायर थे, भगवान और मंदिर उनकी जिंदगी के महत्वपूर्ण पहलू थे।

उनकी बड़ी पुत्री सुधा और बड़ा पुत्र सुभाष तो अपना वैवाहिक जीवन को माता-पिता के मनोनुरूप अपनाते हैं पर असल समस्या छोटे बेटे सुरेश के साथ पेश आती है। अपने विवाह को लेकर माता-पिता की सभी आपत्तियों को सुरेश ऐसे पूर्णत: उपेक्षित कर देता है जैसे वे सिर्फ 'बैकग्राउंड शोर हों'[2] लेकिन उसी बेटे के तलाक पर, विदेश में बसी बूढ़ी हो रही माँ का ठेठ भारतीय हृदय उसी का पक्ष लेता है 'इन गोरे लोगों में तो जरा भी सहनशीलता नहीं है। छोटी-छोटी बातों में तलाक ले लेते हैं।..'[3]

दूर देश डेनमार्क से वृद्ध जीवन की एक तस्वीर यदि यह है 'दोपहर थी, सड़कों व फुटपाथों पर अधिकांश बूढ़े नजर आ रहे थे... यह समय बूढों के लिए था कि अपने सूने घरों से निकलें, खरीदारी करने, किसी से मिलने.... यहाँ लोग संभवत: अधिक वर्ष जीते हैं। इतने बूढ़े नजर आते हैं मगर अकेले ही तनहा, अगर वे दुकेले होते भी हैं तो उनका साथी भी बूढ़ा।'[4]

तो जीवन–दृष्टि में भारतीयता का मेल कुछ यूँ दिखाई देता है 'स्मिता को सहसा अपने माता–पिता का ध्यान आ गया जो हिमाचल प्रदेश के एक छोटे शहर में रहते हैं। वे भी बूढ़े हैं।.. स्मिता को अपने माता–पिता की कभी चिंता नहीं करनी पड़ी.. कोपेनहेगेन की सड़कों पर तनहा मंडराते बूढ़ों को देखकर स्मिता को पहली बार अपने माता–पिता के साथ अपने भाई के रहने के महत्व का आभास हुआ। उसने मन ही मन अपने भाई को धन्यवाद कहा।'[5]

भूमंडलीकरण के दौर में देश और विदेश के सांस्कृतिक–सामाजिक परिदृश्य बहुत भिन्न नहीं रह गए हैं। इमीग्रेंट्स के प्रति देश विशेष का बदलता रुख, प्रवासी जीवन के संघर्ष, विदेश में अनुभव होने वाला परायापन, अकेलेपन में आक्रांत होना इन सूक्ष्म रेखाओं के साथ ही विदेश–प्रवास में वृद्ध जीवन की पहचान पूरी होती है। दूर देश में एक बड़े परिवार के मुखिया शांडिल्य जी जब रिटायर हो चुके, खुद को थका और तनहा महसूस करते हुए सोचते हैं कि अब करने को रह ही क्या गया है? जो भी घड़ी अच्छी गुजर जाए, तब उन्हें लगता कि बुढ़ापे में अपना देश ही ठीक है, यह मुल्क कितना थका हुआ है। कितनी उदासी है यहाँ!

'वेअर डू आई बिलांग' उपन्यास का मंतव्य केवल विदेश में वृद्धावस्था के दु:खों की गाथा, वृद्ध मन की उलझन और हताशा को अंकित करना भर नहीं है, बल्कि सुदूर विदेश और अपने देश के परिवार, समाज, संस्कृति, धर्म और आध्यात्म, राजनीति तथा व्यापक जीवन–शैली से जुड़े अंतरों को रेखांकित करना भी है। उपन्यास से व्यक्त होता है कि वास्तव में प्रवास में वृद्ध जीवन एक प्रेरणा भी है। शांडिल्य दंपत्ति की प्रभावपूर्ण, विश्वसनीय और स्वाभाविक सृष्टि उपन्यास की एक उपलब्धि है। वे दूसरे देश में अपने जीवन की राह आसान करने को तत्पर कर्मठ और विचारशील वृद्ध हैं, जो अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने को भी इच्छुक हैं, और यह साबित करते हैं कि यौवन से वृद्धावस्था तक, जीवन की अस्थिरता के बीच पाने और खोने का अनवरत क्रम बना रहना ही जीवन की गति है। उपन्यास में विविध आयुवर्ग के पात्रों के बीच डॉ. देव और शांडिल्य जैसे वृद्ध, अपनी भावनाओं, आधुनिकता और बहुसांस्कृतिक अवधारणाओं को लेकर चलते हैं, उपन्यास के विन्यास में उनकी जीवन शैली की निजता उभर कर आती है।

प्रवासी साहित्य की एक विशेषता नौस्टेल्जिया घर की याद या अतीत में विचरण कही जाती है। विदेश जा बसे भारतीयों में भी वृद्धजन अपनी जड़ों से जुड़े होने के बावजूद तमाम परिस्थितियों में संतप्त होते हैं। अतीत की याद या नौस्टेल्जिया उन्हें ऐसे घेर लेता है कि छोटी–छोटी बातें मन में घमासान मचा देती हैं "कभी–कभी मैं यहाँ अपने देश के फल और सब्जियाँ बहुत मिस करता हूँ.... कद्दू, लौकी, टिंडा, परवल.... लग्जरी जैसे लगते हैं।..

इंडिया में मैं इन सब्जियों को छूता तक नहीं था। यहाँ इन्हें खाने के लिए तरस जाता हूँ।"[6] वेअर डू आई बिलांग के अन्य प्रमुख पात्र कहते हैं।

उपन्यास के शीर्षक में एक प्रश्न निहित है, 'वेअर डू आई बिलांग' अर्थात मेरा घर कहाँ है? इस अस्मितामूलक प्रश्न का सामना पहली, दूसरी या तीसरी पीढ़ी तक के प्रवासी को करना पड़ सकता है। गोविन्द प्रकाश शांडिल्य अपनी वृद्धावस्था में कहते हैं: "तीस सालों से डेनमार्क में रह रहा हूँ, जब भी किसी से मिलता हूँ, लोग पूछते है कहाँ से हूँ? मगर एक पूरी जिंदगी यहाँ गुजारने के बाद मैं स्वयं से पूछता हूँ वेयर डू आई बिलांग?'[7] शायद यह प्रश्नाकुलता ही जीवन की गति है।

पॉल की तीर्थयात्रा[8] अर्चना पैन्यूली का यह उपन्यास कोपेनहेगेन की पृष्ठभूमि पर रचित भारतीय मूल की नीना और उसके डेनिश पति पॉल के जीवन की यादों और साथ सहे सुख-दु:ख की कहानी है। भारतीय मूल की नीना के माता-पिता औए पॉल की माँ उपन्यास के वृद्ध पात्र हैं। मात्र पच्चीस साल की उम्र में तलाकशुदा नीना ने भारतीय लीक से हटकर बहुत कुछ किया। पारंपरिक माता-पिता का कड़ा अनुशासन उसे रोक नहीं सका। बूढ़े माता-पिता ने बहुत सहा, और खुद को ऐसे समझाया 'नीना ने हमारी भारतीय लीक से बहुत कुछ अलग किया है... वह डेनिश है, इंडियन नहीं। वह यूरोपियन है... हम उससे भारतीय तौर-तरीकों पर चलने की उम्मीद नहीं कर सकते।[9]

लेकिन भीतर का अंतद्र्वंद्व सामने आ ही जाता, जब नीना के पिता डॉक्टर रामचन्द्र, गणित के प्रोफेसर यह कहते 'सब कुछ दो शब्दों में टिका है परवाह और फर्क, अगर तुम किसी बात की परवाह नहीं करते तो कुछ फर्क नहीं पड़ता.... यूरोपियन लोगों ने 'लोग क्या कहेंगे' इसकी परवाह करना छोड़ दिया, इसलिए कोई फर्क नहीं पड़ता। हम हिंदुस्तानी अभी भी इस फिक्र में जीते हैं लोग क्या कहेंगे?'[10]

बेटी के दूसरे पति ने नीना के वृद्ध पिता को अनुभवों से भरा पाया.. मुक्त हृदय से अपना ज्ञान बाँटते हुए वे पॉल से कहते 'पति-पत्नी को जीवनपर्यंत एक साथ प्रेम नहीं, प्रतिज्ञा रखती है... हम हिंदुस्तानी तलाक की कभी नहीं सोचते, भले ही कुछ भी सोच लें',[11] "बेटी के दूसरे तलाक पर भी डॉ. श्रीनिवासन दामाद को घर बुलाकर बेबाक कहते हैं- हमारी भी लड़ाई होती है और पहली लड़ाई, किसी दूसरी लड़ाई से भिन्न नहीं होती। मगर हमारे दांपत्य जीवन के स्थायित्व का राज यह है कि हम जिंदगी भर लड़ सकते हैं। तुम लोग जिंदगी भर लड़ नहीं सकते। बहुत जल्दी परास्त हो जाते हो।'[12]

नीना के बिखरते दांपत्य की विवशता में, उसकी जिंदगी को सहेजने समेटने में वृद्ध माता-पिता सदैव उसके साथ खड़े हुए। नीना उनकी एकमात्र संतान थी, माता-पिता

के प्रति अपनी जिम्मेदारी को भी बखूबी निभाती थी। वह उनके बुढ़ापे का सहारा हो सकती थी कि इससे पहले ही उसका जीवन असाध्य रोग की भेंट चढ़ गया। अंततः नीना जब हार गई, तब बूढ़े माता-पिता ने अपनी बेटी का अंतिम संस्कार पूरे विधि-विधान से किया, वे उसकी आत्मा की शांति चाहते थे।

उपन्यास में पॉल की पिचहत्तर वर्षीया माँ अपने जीवन के एकांत को विविध रंगों से भर कर जीती हैं। पति की मृत्यु, बच्चों का अपना वैवाहिक जीवन उन्हें वह मुक्ति देता है कि वे अपने पुराने शौक वायलिन वादन को बनाए रखती है, हम उम्र सहेलियों की टोली के साथ कहीं न कहीं जाती रहती है, साथ मिलकर चैरिटी करते हुए लगातार सक्रिय बनी रहती हैं। उनके अंतस्तल की संवेदनाएँ अपने बड़े हो चुके बच्चों के प्रति अब भी वही हैं, जो उनके बचपन में थी... पॉल कहता है 'जब भी मैं घर आता हूँ, माँ यह नहीं सोचती कि उनका एक अधेड़, आत्मनिर्भर, अंतरराष्ट्रीय बेटा घर आया है, वह अभी भी सोचती है कि उनका 'बेबी' घर आया है। मुझसे वैसा ही व्यवहार करती है।'[13]

यह सहृदयता उनके व्यक्तित्व को भीतर-बाहर आलोकित किए रहती है। वे जैसे बूढ़ी होकर भी कभी बूढ़ी नहीं हुई। लेकिन इस बाहरी आवरण के भीतर का सच वे खुद जानती हैं 'यह सही है, पॉल मैंने अपनी जिंदगी जीने के लिए एक दिनचर्या व डगर चुन ली, और मैं बहुत व्यस्त भी रहती हूँ, मगर सच्चाई यह है कि मैं इस किले में अकेली रहती हूँ।'[14] यह अकेलापन उनका चुनाव नहीं, उनकी विवशता है।

पुनर्विवाह में कुछ समय बाद, जब दूसरे पति के साथ भी, तर्क-वितर्क, तनाव और खामोशी से नीना की विवाहित जिंदगी तबाही की ओर बढ़ने लगी, तब नीना के इस आचरण को पॉल की बूढ़ी अनुभवी माँ ने यूँ विश्लेषित किया 'उसके पास धन-दौलत, शोहरत सब है। मगर उसकी बहुत सारी लालसाएँ अधूरी हैं। बहुत सारी अधूरी इच्छाएँ आमतौर पर व्यक्तियों को और विशेष रूप से औरतों को कड़वा बना देती हैं।' पॉल की तीर्थयात्रा उपन्यास के वृद्ध, जीवन के संघर्ष में जुझारू जिजीविषा से ओतप्रोत नजर आते हैं।

कैराली मसाज पार्लर[16]

उपन्यास 'कैराली मसाज पार्लर' अर्चना के पिछले उपन्यास 'पॉल की तीर्थ यात्रा' से आगे का कथाक्रम लेकर आया। यह उपन्यास मानव मन के उतार-चढ़ावों का लेखा-जोखा और मानव नियति की धूप-छाँव का आलेख है। उपन्यास की प्रमुख पात्र नैन्सी है। पार्लर में उसके सम्मुख 108 किलोमीटर की पदयात्रा के बाद, अपनी पूर्व पत्नी नीना को श्रद्धांजलि अर्पित करके लौटा थका-हारा घायल पॉल आ खड़ा होता है। नैन्सी अपने भले व्यवहार और मसाज से उसकी थकान दूर करती है दोनों संवाद से सहानुभूति तक की यात्रा करते हुए बहुत दूर निकल आते हैं।

मसाज पार्लर तक आने से पहले, नैन्सी मौरीन नाम की सत्तर वर्षीया उम्रदराज एकाकी महिला के संपर्क में आती है। मौरीन नैन्सी की मसाज गुरु, उसकी भरोसेमंद दोस्त और परामर्शदाता बनकर उसके जीवन में आकस्मिक रूप से उस समय आती हैं, जब नैन्सी अपने पहले विवाह में पूरी तरह हताश थी। मौरीन नैन्सी के लिए ऐसी दैहिक और भावनात्मक संबल बनी जो दो सशक्त बातें कहती हैं 'लड़की खुदगर्ज बन' और 'थिंक बिग'[17] जीवन के बवंडर के बीच मौरीन का साथ नैन्सी के लिए सुकून भरा है, वे उसे जीवन में सकारात्मक पक्ष पर ध्यान देने को कहती हैं। इसी वजह से नैन्सी पति की बेवफाई के दु:ख को, कालांतर में अपनी जिंदगी के एक छोटे पड़ाव के रूप में देख पाती है। टूटन के बावजूद नैन्सी एक नई डगर तलाशे यह सीख दी मौरीन ने जिससे नैन्सी ने अपने अस्तित्व को पहचाना और पथभ्रष्ट पति से छुटकारा पाया। वृद्धा मौरीन अपने जीवन में हारी नहीं, आवश्यकताओं को सीमित कर सादगी से जीवन जीते हुए संतुष्ट रहती हैं। उनका वृद्ध जीवन नैन्सी के लिए प्रेरणा बन कर आता है। उनके साथ और हाथ में ऐसा जादू है, नैन्सी अपने जीवन के दुखों को उनके पास आकर, उनकी संवेदना का स्पर्श पाकर भूल जाती है, इसलिए बार-बार आती है। कुछ सीखकर जाती है।

अपने दूसरे विवाह में नैन्सी का सामना पति की साठ वर्षीया माँ से होता है, जो साठ साल की उम्र में भी हॉट लगती हैं, पहली ही भेंट में वे आग्रह करती है कि बहू नैन्सी उन्हें उनके प्रथम नाम लॉरा से पुकारे। लॉरा के अकेलेपन से सहानुभूति रखते हुए नैन्सी उनसे बार-बार मिलने जाना चाहती है, पर तीसरी ही मुलाकात में वे स्पष्ट कह देती हैं कि नैन्सी उनके पास इतनी जल्दी-जल्दी न आया करे, अपना समय और ध्यान कहीं और लगाए, इस मुल्क की भाषा सीखे, नौकरी के लिए कोशिश करे, कमाए खाए। इस अजीब अपमानजनक स्थिति में नैन्सी सोचती है हमारे भारत.. में तो बड़े-बूढ़े परिवार के केंद्र में रहना चाहते हैं, और चाहते हैं कि उनके बच्चे व जवान लोग उनसे मिलने आया करें, उनके साथ समय बिताया करें.... यहाँ सभी को प्राइवेसी चाहिए। कितना भिन्न समाज है यहाँ...ठंडी जलवायु की तरह ठंडे लोग... ![18]

इन्हीं लॉरा की पिच्चासी वर्षीया माँ ग्रेथा डेनमार्क के दूसरे टापू के छोटे से नगर में अकेले रहती थीं... यद्यपि अब लॉरा की जिम्मेदारी बनकर, किंतु पहले स्वाधीन, मुक्त, पूर्ण व्यवस्थित रहती आई थी।

नैन्सी के पिता बूढ़े और दक्षिण भारत के मलप्पुरम में अकेले रहते हैं, स्वाभिमानी और सलीकेदार। पैंतालीस की उम्र में पत्नी को खोने के बाद दूसरी शादी नहीं की बल्कि उनके मन में नियति के सामने समर्पण का भाव जागा। पिता के साथ संतानों की जिंदगी सहज व शांतिमय थी। लेकिन विवाहित बेटी नैन्सी के दु:ख से परितप्त उनके हृदय से

सहसा निकल पड़ता है 'तुझे लार्स के साथ रहने की बिलकुल जरूरत नहीं है। एक अकेली औरत एक लाचार औरत से बेहतर विकल्प है'[19] उनका दुर्बल स्वर एकाएक क्रोध में बदल गया, यह बेटी नैन्सी ने भरपूर देखा, नैन्सी के नाते-रिश्तेदारों में कुंजम्मा विशिष्ट है नैन्सी की मौसी, नैन्सी और उसके भाई बहन के जीवन में माँ की स्थानापन्न रही है। कुंजम्मा की भूमिका आरंभिक देखभाल से लेकर महत्वपूर्ण निर्णयों में दखलंदाजी तक पहुँच कर अपना महत्व खोने लगती है। तकरार तक भी पहुँचती है, किंतु नैन्सी के तीसरे पति मार्को के शब्दों में कुंजम्मा है खुद्दार और ईमानदार।[20]

लंबे अरसे के बाद जब नैन्सी गाँव पहुँची तो अब तक वृद्ध हो चुकी मौसी कुंजम्मा और अन्य रिश्तेदार चेरिअम्मा ने कहा "पास-पड़ोस के बूढ़े एक-एक करके खिसकते जा रहे हैं। हम दोनों के लिए भी यमराज का पता नहीं कब बुलावा आता है', कुंजम्मा दार्शनिक अंदाज में बोली 'हमेशा इतनी आपाधापी रही है कि यह भूल ही गए कि कभी मरना भी है, और जब मरने का वक्त आया तो लग ही नहीं रहा कभी जिए भी हैं।"[21]

अर्चना के तीनों ही उपन्यास दूर देश के वृद्ध और उनकी जीवन दृष्टि को यह कह कर परिभाषित करते से प्रतीत होते हैं कि काले बादल कभी स्थिर नहीं रहते, धूप की किरणें भी आ जाती हैं। जीवन में उन्हें जितना बुरा मिला उतना ही भला भी मिला। उनकी खुशियों को ग्रहण लगता रहा, उनके पास कहीं जाने का विकल्प न था, उन्होंने बर्दाशत किया। जिंदगी की आँख मिचौली चलती रही उनके साथ। वे अपने वजूद के लिए हाथ पैर मारते रहे।

उनका जीवन धूप और छाँव से भरा इस अर्थ में रहा कि कुछ सवालों के जवाब न मिल पाने के कारण उनका दिल अनवरत धड़कता भी रहा। उन्हें हमेशा बहुत कुछ नहीं मालूम रहा कि जिंदगी की नई राहें क्या अंजाम लाएंगी, पर हिम्मत जरूरी है जैसे यही उनके जीवन का सूत्र वाक्य बना।

तीनों उपन्यास जीवन के गान से ओतप्रोत हैं। मृत्यु को निराशावादी नियति मानकर जो दृष्टि विकसित होती आई है, इन तीनों उपन्यासों के लगभग सभी वृद्ध पात्र इस बोध को अपने जीवन पर हावी नहीं होने देते। वे अनवरत सक्रिय बने रहना पसंद करते हैं। अर्थ की दृष्टि से वे प्राय: सुदृढ़ स्थिति में हैं, अपवाद स्वरूप मौरीन जैसी वृद्धा भी हैं जिनके पास कम है पर गम तो नहीं है!

वृद्धावस्था की एक नई परिभाषा गढ़ते, एक नई छवि से साक्षात्कार कराते शांडिल्य दंपति, डॉ. देव, श्री और श्रीमती श्रीनिवासन, लॉरा, मौरीन, अप्पा, कुंजम्मा जैसे पात्र पाठक की स्मृति में स्थान बना लेते हैं।

संदर्भः

1. गोयनका, डॉ. कमल किशोर, प्रधान संपादक–प्रवासी साहित्य जोहान्सबर्ग से आगे (2015) विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
2. International Press Centre Denmark, (2014) Invitation to book release held by Archana Painuly Retrieved from:
   http://ipcd.dk/en/briefings/events/newsdisplaypage/?newsID=1C577C33-84D1-4DB8-9C07-39DF2C6B3EA2
3. पैन्यूली, अर्चना (2003) परिवर्तन, अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली
4. पैन्यूली अर्चना (2018) हाईवे E47, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली
5. साहा, रणजीत (2016) हिंदी यथास्थिति के विरुद्ध, राजभाषा मंजूषा, अंक 20
6. Sati, Vijaya (2015) *Where do I belong, Alive,* January 2015.6
7. पैन्यूली, अर्चना (2010) *'वेअर डू आई बिलांग',* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
8. वही, पृ. 26
9. वही, पृ. 41
10. वही, पृ. 63
11. वही, पृ. 63
12. वही, पृ. 22
13. वही, पृ. 153
14. पैन्यूली, अर्चना (2016) पॉल की तीर्थयात्रा, राजपाल एंड संस, दिल्ली
15. वही, पृ. 36
16. वही, पृ. 90
17. वही, पृ. 88
18. वही, पृ. 166
19. वही, पृ. 135
20. वही, पृ. 140
21. वही, पृ. 105
22. पैन्यूली, अर्चना 2020 कैराली मसाज पार्लर, भारतीय ज्ञानपीठ
23. वही, पृ. 51
24. वही, पृ. 76

❑❑

हिंदी : अंतरराष्ट्रीय भाषा (वृहत्तर संदर्भ)

तस्मीना हुसैन

सार:

हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन–अध्यापन भारतीय संस्कृति और विश्व के सबसे बड़े जनतंत्र एवं एक प्रभुसत्ता संपन्न राष्ट्र की राष्ट्रभाषा–राजभाषा के रूप में होता है। हिंदी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किसी पहचान की मोहताज नहीं है, वरन् उसने विश्व परिदृश्य में एक नया मुकाम हासिल किया है। विदेशों में बसे करोड़ों भारतवंशियों के लिए हिंदी उनकी जड़ों से जुड़ने तथा उनकी आस्था का प्रतीक है। हिंदी के माध्यम से वे अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की अभिव्यक्ति करते हैं। वास्तव में हिंदी एक ऐसे समुदाय की भाषा है जो अपने संप्रेषण व्यवहार के लिए संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। यह भारत की सामाजिक अस्मिता का साधन है। भारत की अन्य भाषाओं के साथ सतत संपर्क होने के कारण यह भाषा सभ्यता और संस्कृति का प्रबल आधार है। अप्रवासी भारतीय पूरे विश्व में फैले हुए हैं, जिनकी संख्या लगभग 2 करोड़ है।

बीज शब्द: *हिंदी, भाषा, संस्कार, संपर्क भाषा, राष्ट्रीय अस्मिता, व्यवहार, व्यापकता।*

हिंदी विश्व की सबसे बड़ी भाषा है। आज हिंदी की अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में एक पहचान है। हिंदी विश्वभाषा के रूप में स्थापित होने की प्रक्रिया से गुजर रही है। विदेशों में हिंदी के पठन–पाठन और प्रचार–प्रसार के दो कारण है– पहला विश्वस्तर पर प्रवासी भारतीयों का होना तथा दूसरा– विभिन्न देशों द्‌वारा भारत और भारतीय संस्कृति की ओर उन्मुख होना। वृहत्तर संदर्भ में हिंदी का प्रयोग विदेशी भाषा के रूप में विदेशियों के लिए हो रहा है। पहले वर्ग में वे देश आते हैं, जहाँ भारतीय मूल के लोग वर्षों पहले खेतिहर मजदूरों के रूप में गए थे और वहीं बस गए। दूसरे वर्ग के लोग वे हैं जो आधुनिक युग में प्रयोजनपरक कार्य करने के लिए भारत से बाहर गए। तीसरा वर्ग उन देशों का है, जो भारत के पड़ोसी देश हैं, चौथा वर्ग चीन, जापान, मंगोलिया, पोलैंड, रूस, कोरिया आदि भाषा के माध्यम से हिंदी का विपुल साहित्य, भारतीय संस्कृति व सभ्यता और भारतीय दर्शन का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

हिंदी भाषा केवल भारत तक ही सीमित नहीं है। वह अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान, मालदीव, म्यांमार, बांग्लादेश, श्रीलंका में भली प्रकार बोली और समझी जाती है। नेपाल की तो प्रमुख भाषा है। इसके अतिरिक्त फ़ीजी, मॉरीशस, ट्रिनिडाड टुबैगो, सूरीनाम, गुयाना का बहुसंख्यक जनसमाज भारतीय प्रवासियों का है, जिनकी मूल भाषा आज भी हिंदी है। हिंदी की यही धारा सर्वशक्तिमान और प्रवाहमान है। वहाँ स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इन देशों में हिंदी के समाचार पत्रों और पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होते हैं। फ़ीजी और मॉरीशस में हिंदी को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। मॉरीशस में हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। वहाँ के विद्यालयों में अधिक संख्या हिंदी माध्यम स्कूलों की है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी की मान्यता का प्रस्ताव इन्हीं देशों का संयुक्त प्रयास था। इन्हीं देशों में से किसी न किसी देश में प्रतिवर्ष 'विश्व हिंदी सम्मेलन' का आयोजन होता है, जिसमें विश्वभर के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। इस समुदाय ने अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखने के लिए हिंदी भाषा को सुरक्षित रखा है।

यूरोप में भी हिंदी भाषा-भाषी लोग अधिक संख्या में बसे हैं। इन देशों में हिंदी पठन-पाठन की भी व्यवस्था है। रूस, जर्मनी, इंग्लैंड, फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया, चीन, हाँगकाँग, सूडान, इजराइल, इटली, ब्रिटेन, चेकोस्लाविया, रूमानिया आदि देशों के 150 विश्वविद्यालयों में एम.ए. और पी-एच.डी. स्तर तक हिंदी के अध्ययन एवं अध्यापन की समुचित व्यवस्था है। अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों में भी एम.ए. स्तर तक हिंदी की नियमित कक्षाएँ चलती हैं। जापान में भी बड़ी संख्या में लोग हिंदी जानते हैं। कुछ जापानी लेखकों द्वारा हिंदी में लिखे गए बाल उपन्यास, कहानियाँ और निबंध भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। सोवियत संघ में तजाकिस्तान तथा उज्बेकिस्तान की सीमा के पास हिंदी बोली जाती है। स्पष्टतः हिंदी केवल भारत की ही नहीं बल्कि एशिया तथा अन्य कई देशों के सांस्कृतिक स्पंदन की भाषा है। उसका विश्वभर में प्रसार है। हिंदी विश्व भाषाओं में अंग्रेजी और चीनी भाषा के बाद तीसरा स्थान रखती है।

अलग-अलग राष्ट्रों में पारस्परिक संवाद की भाषा को ही अंतरराष्ट्रीय भाषा कहा जाता है। आज के युग में इस प्रकार की भाषा की आवश्यकता और महत्व और भी बढ़ गया है क्योंकि आज हम एक 'विश्वग्राम' में रहे हैं। चाहे संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को विश्व भाषा का दर्जा अभी तक प्राप्त न हो सका हो, लेकिन उसके अंतरराष्ट्रीय संदर्भों की अनदेखी नहीं की जा सकती। रोजगार की तलाश और आधुनिक व्यवस्था ने इसे विदेशों में भी फैलने के अनुकूल माहौल प्रदान किया। दक्षिण अफ्रीका के 'डरबन' में भारतीय मूल के निवासी सर्वाधिक है। यहाँ की 'नैताली भाषा' भोजपुरी हिंदी का ही एक रूप है। प्रवासी भारतीयों के अतिरिक्त विदेशी मूल के भी अनेक लोग हिंदी भाषा बोलते और समझते हैं। भारत के बाहर जिन देशों में किसी न किसी रूप में हिंदी का प्रचलन है उसके पीछे इन प्रवासी भारतीयों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

हिंदी भाषा के क्षेत्र को विस्तारित करने में फिल्म, उसके गाने, ग्लोबलाइजेशन और बाजारवाद का महत्वपूर्ण योगदान है, इसलिए तमाम बहुराष्ट्रीय कंपनियों और देशों ने अपने व्यापारिक हित के लिए हिंदी को बढ़ावा दिया।

हिंदीतर भारतीय क्षेत्रों और वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा-भाषियों की जनसंख्या में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। संयुक्त राज्य अमेरिका में हिंदी के साथ भारतीय भाषाओं एवं भारतीय संस्कृति के कई केंद्र स्थापित हैं। इस प्रकार के केंद्रों में शिकागो, इलिनाय, बोस्टन, टेक्सॉस, सिडनी, कैलिफोर्निया, विस्कांसिन, कोलंबिया, पेन्सिलवानिया, वाशिंगटन एवं वर्जीनिया विश्वविद्यालय, अमेरिकन विश्वविद्यालय, लांगवीच कीट्मेज, मिशिगन विश्वविद्यालय, सिराक्यूज विश्वविद्यालय आदि प्रमुख हैं। शैक्षणिक संदर्भों में यूरोप, अमरीका और एशिया में हिंदी का प्रसार हुआ है।

आज हिंदी भारतीय संस्कृति और परंपरा की सशक्त संवाहिका बनकर सरहदों को पार करती हुई भाषिक यात्रा में निरंतर आगे बढ़ रही है। सन् साठ के दशक में भारतीयों का जैसे-जैसे प्रवास गमन होने लगा, हिंदी के पंख भी परसने लगे। विदेशों में बसे प्रवासी भारतीय अपनी भाषा संस्कृति से स्वयं जुड़े रहकर अपने पीढ़ी को इस विरासत को सौंपते आ रहे हैं और यह कार्य हिंदी के माध्यम से ही सहज रूप से होता आया है। इसी उद्देश्य हेतु विदेशों में भी हिंदी शिक्षण की आवश्यकता दिनों दिन बढ़ रही है। जहाँ उन प्रवासी भारतीयों के बच्चे अपनी मातृभाषा को आत्मसात् करने में असुविधा का सामना कर रहे हैं, उन्हें एकमात्र हिंदी ही सहज और स्वाभाविक लग रही है। चूँकि आज हिंदी शिक्षण का उद्देश्य संस्कृति के साथ-साथ बाजारीकरण भी है। विश्व का ऐसा कोई देश नहीं है जो आज हिंदी से अछूता है। साहित्य सृजन और उसके प्रकाशन को अधिक जनतांत्रिक बनाने में इंटरनेट की भूमिका महत्वपूर्ण है। यह भाषा विस्तार का एक पहलू है। वैश्विक मानचित्र पर हिंदी के बढ़ते चरण एक सुखद अनुभूति है। भारतीय मूल के अनेक लोग दुनिया के सभी हिस्सों/देशों में बसे हुए हैं।

लंदन में हिंदी शिक्षण हेतु 'हिंदी महासभा' ने भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वहाँ हिंदी शिक्षण को प्रभावी बनाने में डॉ. स्नेल का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने विदेशी छात्रों के लिए हिंदी शिक्षण पर कई पुस्तकें, ऑडियो टेप के साथ लिखी है। उनकी लिखी 'टीच योर सेल्फ हिंदी' और 'बिगनर्स हिंदी स्क्रिप्ट' विदेशी छात्रों के बीच हिंदी सीखने हेतु काफी लोकप्रिय है। ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण को बढ़ावा देने में भारतीय उच्चायोग का भी सहयोग सराहनीय है। निस्संदेह वहाँ बसे प्रवासियों की गतिशीलता भी इस दिशा में अपना अभूतपूर्व योगदान दे रहे हैं। अनेक संस्थाओं ने भी इस चुनौती को स्वीकार कर स्वयं को हिंदी के प्रति समर्पित भाव रखा है।

विदेशों में हिंदी शिक्षण की गतिशीलता के लिए मानक पाठ्यक्रम, प्रशिक्षित अध्यापक, संवादपरक पाठ्यपुस्तकें, शिक्षण में कंप्यूटर और शिक्षण सामग्री का समुचित प्रयोग हिंदी को और अधिक प्रभावी बना सकता है। प्रोजेक्टबेस्ट लर्निंग पर ध्यान दिया जा रहा है। हिंदी शिक्षण के लिए आज इंटरनेट सबसे उपयोगी सिद्ध हुआ है। ब्रिटेन में प्राइमरी या सेकेंड्री स्कूलों के स्थान पर वहाँ की संस्थाओं में 'भारतीय विद्या भवन' सबसे प्राचीन संस्था है जो भारतीय संस्कृति एवं हिंदी भाषा के लिए कार्य कर रही है। साथ ही वहाँ की अन्य संस्थाएँ और हिंदी प्रेमी अध्यापकों ने भी बच्चों को प्रेरित किया है। वहाँ रह रहे मूल निवासियों को भी द्विभाषिकता के तौर पर अब हिंदी सीखने की आवश्यकता महसूस होने लगी है।

प्रतिवर्ष केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा एवं दिल्ली केंद्र पर विदेशी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति एवं कुछ स्वयं के खर्च पर पठन हेतु भारत आते हैं, जिसमें प्रायः अधिकांश देशों के विद्यार्थीगण अपनी रुचि से हिंदी भाषा को सीखते हैं। शिक्षण में गतिशीलता लाने हेतु उन विद्यार्थियों के लिए सुव्यस्थित पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। विदेशी छात्रों का हिंदी के प्रति उनके मानसिक स्तर एवं परिवेश को समझते हुए द्वितीय भाषा के तौर पर पाठ्यक्रम बनाए गए हैं। इसे आवश्यकतानुसार अपडेट भी किया जाता है। हिंदी शिक्षण को सुनियोजित ढंग से चलाने हेतु समय-समय पर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन विभागीय स्तर पर करवाए जाते हैं, जिसके माध्यम से उनका उत्साहवर्धन हो सके। हिंदी भाषा उनके लिए केवल भाषामात्र न होकर संस्कार भी है।

ब्रिटेन की भाँति अमेरिका में भी भारतवंशी बहुत पहले से ही अपनी भाषा संस्कृति को सहेजते रहे हैं। वहाँ के विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। जहाँ हिंदी नियमित रूप से पढ़ाई जाती है। हिंदी शिक्षण हेतु पाठ्यपुस्तकें तैयार की गई तथा प्राध्यापकों को ट्रेनिंग देकर अध्यापन हेतु तैयार किया गया। इन प्राध्यापकों को इंडोलॉजिस्ट कहा गया। ये भाषा, समाज एवं संस्कृति के साथ इतिहास भी पढ़ाते थे।

अमेरिका में भारतीय प्रवासियों की संख्या बढ़ने पर हिंदी शिक्षण में वृद्धि हुई। 1947 में वहाँ यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया में दक्षिण एशियाई विभाग खोला गया है, जिसमें हिंदी भाषा भी शामिल थी। 1960 में अनेक विश्वविद्यालय खुले। 1990 के बाद हिंदी शिक्षण अमेरिका में तेजी से बढ़ने लगा। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जार्जबुश ने राष्ट्रीय सुरक्षा भाषा कार्यक्रम में अपने देशवासियों से हिंदी, फारसी, अरबी, चीनी व रूसी भाषाएँ सीखने को कहा था, यह भारत के लिए गौरव की बात है। अमेरिका में टेक्सास के स्कूलों में पहली बार 'नमस्ते जी' नामक हिंदी की पाठ्यपुस्तक को हाईस्कूल के छात्रों के लिए पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। 480 पेज की इस पुस्तक को भारतवंशी शिक्षक अरुण प्रकाश ने 8 सालों की मेहनत से तैयार किया है।

अमेरिका में हिंदी शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका 'युवा हिंदी संस्थान' की भी है। सरकारी अनुदान से औपचारिक भाषा-शिक्षण के कार्यक्रमों के साथ अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ प्रवासी युवाओं के लिए हिंदी भाषा एवं सांस्कृतिक ज्ञान हेतु अध्यापन कार्य कर रही है। जिनमें मुख्य रूप से 'हिंदी यू.एस.ए.', 'बाल-विहार', 'चिन्मय मिशन', 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति', 'बाल गोकुलम', 'विश्व हिंदी न्यास' आदि है।

पाकिस्तान के कराची, इस्लामाबाद और लाहौर तीनों विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण होता है। इसमें प्रमाण पत्र, डिप्लोमा पाठ्यक्रमों के साथ-साथ एम.ए. (हिंदी) की पढ़ाई भी होती है।

श्रीलंका में हिंदी निकेतन की विभिन्न शाखाओं में केलणिय विश्वविद्यालय, कोलंबो विश्वविद्यालय, श्री जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय तथा निजी संस्थानों में हिंदी का अध्यापन उपाधि स्तर पर लगातार चल रहा है।

अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी का प्रयोजनमूलक पक्ष महत्वपूर्ण है। हिंदी सीखने के बाद विदेशी लोग अपने देश में अनुवादक, आशु-अनुवाद, अध्यापक, स्थानीय प्रसारण आदि के पद पर नियुक्त होते हैं और हिंदी के प्रचार-प्रसार में योगदान करते हैं। जनसंचार के क्षेत्र में भी इसकी विशेष भूमिका है। जनसंचार के तीन प्रमुख माध्यमों-रेडियो, दूरदर्शन तथा पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी की गूँज सुनाई पड़ती है। मॉरीशस की 'हिंदुस्तानी', 'जागृति', सूरीनाम की- 'आर्य दिवाकर', ब्रिटेन की- 'अमरदीप', 'पुरवाई', 'प्रवासी टुडे', स्वीडन की- 'शांतिदूत', ऑस्ट्रेलिया की- 'चेतना', कनाडा की 'भारती', 'हिंदी चेतना', 'वसुधा' ने विश्व हिंदी साहित्य के मंच पर अपना विशेष स्थान बनाए हुए हैं।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। विदेशों में हिंदी के सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों में भारतीय संस्कृति के बारे में जानकारी समाहित की गई हैं। भारतीय सांस्कृतिक परिषद अपनी विविध योजनाओं के तहत विदेशों में हिंदी प्राध्यापकों को भेजते हैं तथा विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी करते हैं। स्पष्ट है कि हिंदी का समाज शास्त्रीय पक्ष एक ओर उसे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ प्रदान करता है तो दूसरी ओर अंतरराष्ट्रीय संदर्भ के विभिन्न प्रयोजनपरक उपसंदर्भ भी प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष: हिंदी के अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को देखने से यह प्रतीत होता है कि शैक्षणिक संदर्भों में यूरोप, अमेरिका और एशिया के अनेक देशों में हिंदी का प्रसार हुआ है। यह भारतीय भाषा संस्कृति की संबल संवाहिका है। भारतीय संस्कृति तथा भाषायी परिस्थितियों का प्रभाव उसके अंतरराष्ट्रीय संदर्भ पर भी पड़ा है। तकनीकी और पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग के साथ-साथ हिंदी को सहज भाषा के रूप में अपनाया जाए। हिंदी भाषा समुदाय की आत्मचेतना को आकार देने के अतिरिक्त उसकी भाषाई सांस्कृतिक अस्मिता की

सर्वाधिक प्रयोग में आने वाली व सक्रिय प्रतीक है। परदेस में इसके शब्दों की खनखनाहट वहाँ बसे भारतीयों को अपने देश में होने का अहसास कराती है। हिंदी भाषा अखिल भारतीय होने के साथ-साथ वैश्विक विस्तार के नए आयाम छू रही है। यह नई दुनिया बनाने में सफलता की ओर अग्रसर है।

संदर्भः

1. ग्लोबल हिंदी-(साहित्य, संस्कृति और अनुवाद), प्रो. रमा, अनंग प्रकाशन, 2021, पृ. 250
2. हिंदी भाषा का आधुनिकीकरण एवं मानकीकरण, शुक्ल प्रो. डॉ. त्रिभुवन, वाणी प्रकाशन, 2015, लेखकाधीन।
3. हिंदी की राष्ट्रीय स्वरूप, राय ऋषिकेश, प्रकाशन संस्थान, 2013, पृ. 372-390
4. हिंदी के गतिमान क्षितिज, सिंह डॉ. जोगेंद्र, तक्षशिला प्रकाशन, 1997, पृ. 189-261
5. हिंदी का भाषिक और सामाजिक परिदृश्य, गोस्वामी कृष्ण कुमार, साहित्य सहकार, 2009, पृ. 53-70

❑❑

बर्मा (म्यांमार) में बौद्ध धर्म : सांस्कृतिक प्रसार और वर्तमान में प्रासंगिकता

श्वेता गुप्ता

सारः

बर्मा जिसका आधुनिक नाम म्यांमार है, दक्षिण पूर्वी एशिया के प्रवेश द्वार पर स्थित है। भारत एवं बर्मा के मध्य राजनीतिक, व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संपर्क प्राचीन काल का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इस संदर्भ में भारतीय संस्कृति ने संपूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया की राजनीति, कला और धर्म को गहरे रूप से प्रभावित भी किया। वर्तमान में भारतीय हिंदू एवं बौद्ध धर्म न केवल बर्मा देश में व्यापक रूप से पालन किया जाने वाला धर्म है बल्कि यहाँ इन धर्मों की जड़े बहुत गहरी है। बौद्ध धर्म का प्रसार शांतिपूर्ण तरीकों से हुआ। शाक्यमुनि बुद्ध ने स्वयं इसकी मिसाल प्रस्तुत की। घूम–घूम कर उपदेश देने वाले शिक्षक के रूप में उन्होंने आसपास के राज्यों की यात्रा करके अपने ज्ञान को उन लोगों में बाँटा जो उसे ग्रहण करने के लिए तैयार थे और रुचि रखते थे। बौद्ध धर्म अपनी जन्म भूमि भारत से बाहर निकलकर विश्व के अन्य क्षेत्रों में पहुँचने के क्रम में सर्वप्रथम अशोक महान द्वारा धम्म प्रचार की प्रक्रिया से दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में पहुँचा। जब यह धर्म दक्षिण पूर्व एशिया की भूमि पर पहुँचा तो इस क्षेत्र के शासकों ने इसका स्वागत और सम्मान किया। प्रसार की अपनी प्रक्रिया के दौरान बौद्ध धर्म सुव्यवस्थित ढ़ग से विदेशी व्यापारियों की बौद्ध मान्यताओं में स्थानीय लोगों की दिलचस्पी के कारण सहज रूप से विकसित होता हुआ दिखाई देता है। वर्तमान समय में भी बर्मा में बौद्ध धर्म के अनुयायी है। वे भारत को ही अपनी धर्म भूमि समझते है। थाइलैंड, कम्बोडिया, लाओस, श्रीलंका आदि देश भी वर्तमान में बौद्ध धर्म के प्रमुख केंद्र है। बौद्ध धर्म के महायान और थेरवादी संप्रदाय का प्रचार इन देशों में हुआ है। बौद्ध धर्म के कारण भारत और बर्मा के साथ न केवल सांस्कृतिक संबंधों का विकास हुआ है वरन् वर्तमान के राजनीतिक, व्यापारिक, सामरिक संबंध भी सुदृढ़ हो रहे हैं।

मूल शब्दः महायान, थेरवाद, सुवर्णभूमि, सुवर्णद्वीप, बर्मा, म्यांमार, पगोडा।

प्रस्तावना: प्राचीन काल से ही भारत का दक्षिण पूर्व एशिया के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। यहाँ तक कि वर्तमान काल में भी भारतीय समुद्री नीतियों में दोनों क्षेत्रों के बीच के सभी अतंरालों को समाप्त करने के लिए अपनी **एक्ट ईस्ट पालिसी** पर काफी दृढ़ है। दक्षिण पूर्व एशिया ने समय के साथ समान परंपराएँ विकसित की है, जिसमें बौद्ध धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जब कोई विचार एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रसारित होता है तो उसे प्राप्तकर्ता क्षेत्र के बीच आसानी से स्वीकृति मिल जाती है, यदि वह देश, उस देश को श्रेष्ठ संस्कृति से उत्पन्न मानता हो। बौद्ध धर्म के दक्षिण पूर्व एशिया में प्रसार के संबंध में भी यही तथ्य है। दक्षिण पूर्व एशिया शब्द पहली बार 1900 ई. में एक ऑस्ट्रेलियन भौगोलिक पत्रिका में लिखा गया लेकिन इस शब्द का व्यापक प्रयोग द्वितीय विश्व युद्ध के समय किया गया था। इस भौगोलिक क्षेत्र में बर्मा (म्यांमार) थाइलैंड, कम्बोडिया, लाओस वियतनाम, मलेशिया, सिंगापुर, ब्रुनेई, फिलीपींस आते है। जनसंख्या की दृष्टि से देखें तो इस क्षेत्र में धार्मिक विविधता पाई जाती है। इंडोनेशिया, विश्व की सबसे बड़ी मुस्लिम आबादी वाला देश है। वहीं थाइलैंड, बर्मा थेरवादी बौद्धों की आबादी तथा फिलीपींस ईसाई आबादी वाला देश है। भारतीय संस्कृति के व्यापक रूप से प्रभावित होने के कारण यह क्षेत्र वृहत्तर भारत के नाम से भी प्रसिद्ध है।

बर्मा में बौद्ध धर्म का प्रसार: सत्यकेतु विद्यालंकार ने भारत के सांस्कृतिक साम्राज्य का क्षेत्र दक्षिण पूर्व एशिया को माना है।[1] प्राचीन साहित्य में जिन प्रदेशों को **सुवर्णभूमि** कहा गया है बर्मा भी उनमें से एक है। बर्मा, वस्तुत: भ्रम्म शब्द का अपभ्रंश है। बर्मा सुवर्णभूमि का पश्चिमी अपरांत (सीमावर्ती) प्रदेश था और भारत की पूर्वी सीमा उसके साथ लगती थी। बर्मा में न केवल भारतीय राजाओं के शिलालेख मिले हैं वरन् भारतीय व्यापारियों द्वारा खुदवाये लेख भी वहाँ से प्राप्त होते हैं। बुद्ध के समय से पहले भी बर्मा के साथ भारत के व्यापारिक संबंध समुद्र के रास्ते था, जिसका ज्ञान जातकों से होता है। किंतु, भारतीय धर्म प्रचार के उद्देश्य से इस देश में जाने का आरंभ बौद्धों द्वारा किया गया। अशोक ने आचार्य उपगुप्त के नेतृत्व में बौद्धों की द्वितीय महासभा ने विदेशों में अपने प्रचारक भेजे, तब इन देशों में बौद्ध स्थविर और बौद्ध भिक्षु धम्म प्रचार करने गये। महावंश के अनुसार पाटलिपुत्र सम्मेलन में **सोण** और **उत्तर** को 253 ई. पू में बर्मा में बौद्ध धर्म का प्रचार करने भेजा।[2] केवल बौद्ध धर्म ही नहीं वरन् शैव, वैष्णव आदि पौराणिक धर्मों का भी प्रचार बर्मा में हुआ है।

जब हम बर्मा का इतिहास पढ़ते हैं तो पता चलता है कि उनके लोकगीत अधिकांश हिंदू धर्म से जुड़े हैं। उनके नगरों के नाम भी स्थानीय और भारतीय भाषाओं में हैं। संभवत: भारतीय अप्रवासियों के यहाँ रहने के कारण ऐसा हुआ है।[3] बर्मा के विभिन्न राज्यों में प्रचलित परंपराओं से यह पता चलता है कि बुद्ध के समय में गंगा घाटी से क्षत्रियों की एक

मंडली इस क्षेत्र में पहुँची। ये क्षत्रिय यहाँ 13 वंशों तक शासन करते रहे। इसके अतिरिक्त बर्मा में ऐसे कई पुरातात्विक अवशेष मिले हैं, जो बर्मा में पालि और संस्कृत भाषाओं के प्रचार को इंगित करते हैं। दक्षिणी बर्मा में आधुनिक प्रोम से पाँच मील दक्षिण **प्यू जाति** की पुरानी राजधानी **श्रीक्षेत्र** में स्थित **'ह्मावजा'** से प्राप्त दो सुवर्णपत्र अभिलेख से बौद्ध धर्म का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। ये पाली भाषा में है। इन पर उल्लेखित वचन भारतीयकरण का प्रमाण है-

"ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसञ्च यों निरोधों एवं वादी महासमणों ति।
चत्वारो इद्धिपादा चत्वारो सम्मप धाना॥"

"ये धम्मा हेतुप्पभवा (ते) सं हेतु तथागतो आह।
तेसञ् यों निरोधो एवं वादी महासमणो ति।
इति पि सो भगवा अरहं सम्मासंबुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतों।"

उपर्युक्त कथन पाँचवी सदी में बर्मा में बौद्ध धर्म के प्रभाव को स्पष्ट प्रकट करता है। बर्मा की स्थानीय जातियों ने भारत के स्वदेशी सांस्कृतिक तत्वों को अपनाकर भारतीयता तथा भारतीयकरण को आत्मसात् किया और दोनों संस्कृतियों के सम्मिश्रण से सांस्कृतिक आदान-प्रदान संभव हुआ।[4] इसके अतिरिक्त भारत के आंध्र प्रदेश के नागार्जुनीकोंड से प्राप्त शिलालेखों जो एक इक्ष्वाकुवंशीय श्रीवीरपुरिदत्त माढ़रिपुत्र का है, इसमें तंबपनं (ताम्रपर्णी) के थेरवादी भिक्षुओं ने **कश्मीर- गांधार-चीन-चिलात-तोसली-अवरंत-बंग-वनवासी-यवन दमिल-पलूरा-तबंपन्नि** को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। इस लेख में चिलात संभवत किरात अभिप्रेत है। ये किरात सुवर्णद्वीप के निवासी थे।[5] साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि धान्यकटक, श्रीपर्वत, कांचीपुर, कावेरीपट्टन अर्थात् सारा आंध्र-पल्लव देश हीनयानी थेरवाद का गढ़ था। आंध्र पल्लव की लिपि का 'ह्मावजा' में पाया जाना यही बतलाता है कि सुवर्णभूमि और दक्षिण भारत के बौद्ध धर्म में बहुत समानता थी और दोनों पाली त्रिपिटक के मानने वाले हैं।

दक्षिण बर्मा की **तैलंग जाति में बौद्ध धर्म** का प्रसार था। यहाँ भी भारतीयों ने अपनी बस्तियाँ बसाई थी। यहाँ के प्रमुख नगर सुधर्मावती (थाटोन) और हंसावती (पेगू) थे। ये बौद्ध धर्म के गढ़ थे, जहाँ विद्या और कला कौशल का बहुत प्रचार था। आरंभ काल से 1057 ई. तक सुवर्णभूमि का सांस्कृतिक केंद्र थाटोन था। पेगू में बौद्ध धर्म के अतिरिक्त बाह्मणधर्मी भी रहा करते थे। पेगू में तिस्स का शासन था, साथ ही वह बौद्ध विद्वेषी भी था। उसने बुद्ध की प्रतिमा को खाइयों में फिंकवा दिया था। उसी नगर की कन्या भद्रादेवी

ने बुद्ध की मूर्ति को निकालकर मंदिर में स्थापित किया। राजा तिस्स को जब इसकी सूचना मिली, तो वह बहुत क्रोधित हुआ। किंतु, भद्रा की विचारदृढ़ता, उसके सौंदर्य ने राजा को मुग्ध कर दिया और उसने उसे अपनी पटरानी बनाया और उसके धर्म को स्वीकार कर लिया।[6]

तैलंग जाति, इसमें संदेह नहीं कि एक हजार साल तक बुद्धपरायण जाति रही, किंतु तैलंग और भ्रम्म जाति के राजनीतिक संघर्षों ने उसके ऐतिहासिक साक्ष्यों को सुरक्षित नहीं रहने दिया। किंतु यह भी सत्य है कि भ्रम्म लोगों को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने का श्रेय तैंलग जाति को ही दिया जाता है।

भ्रम जाति में बौद्ध धर्म का प्रचारः वर्तमान समय में बर्मा में जिस जाति का प्रधान रूप से निवास है, वह भ्रम्म या ब्रह्म है। उसी से देश का नाम ब्रह्मा पड़ा, जो बिगड़कर अंग्रेजी में बर्मा हो गया। भ्रम्म या बर्मी जाति में तैलंग (मों) और प्यू शामिल हैं, किंतु सातवीं सदी में भ्रम्म लोग उत्तरी बर्मा में रहते थे। ये उत्तर की ओर से बर्मा में आये। धीरे-धीरे यह जाति पूरे बर्मा में फैल गयी। बर्मा के इतिहास में अनिरुद्ध (अनवहरत) का नाम काफी महत्वपूर्ण है। 11वीं सदी में अरिमर्दनपुर (पगान) इस जाति की राजधानी थी। उस समय बर्मा में भी तिब्बत की ही तरह महायान व्रजयान से मिश्रित हो गया था तथा पतन की ओर चला जा रहा था। व्रजयान तंत्र-मंत्र में विश्वास रखता था, बौद्ध अनुष्ठानों में तांत्रिक क्रियाओं की प्रधानता हो गई थी।[7]

दीपंकर श्रीज्ञान 1042 ई. में तिब्बत गये और बौद्ध धर्म में सुधान कार्य किया। इसी समय भ्रम्म जाति में व्रजयान के प्रभाव को कम करने के लिए एक अन्य बौद्ध भिक्षु, जो इतिहास में "शिन् अर्हन्" के नाम से विख्यात है। वे त्रिपिटक और दूसरे शास्त्रों में भी प्रवीण थे। उन्होंने पगान के राजा अनुरुद्ध को महायान संप्रदाय को छोड़कर हीनयान (स्थविरवाद) को अपनाने हेतु प्रेरित किया। उनके प्रभाव से अनिरुद्ध ने बौद्ध धर्म के स्थविरवाद को अपना लिया। राजधानी पगान में थेरवाद को विकसित करने के लिए वह दक्षिणी बर्मा के थाटोन से पालि ग्रंथों, बौद्ध ग्रंथों को ले आया और पगान में उसने एक विशाल बौद्ध पुस्तकालय को स्थापित किया। इसके अतिरिक्त वह सिंघल से भी पाली त्रिपिटक की प्रतियाँ ले आया, जिसका संपादन कर उन्हें ठीक किया, जो अधिक विश्वसनीय थी। इस प्रकार बौद्ध धर्म की थेरवादी परंपरा का विकास अनुरुद्ध ने किया जिससे यह धर्म न केवल बर्मा में वरन् समुद्र की सीमा पार करके सिंघल में भी प्रचारित किया।[8] सिंघल के राजा को अनिरुद्ध ने चोलों के विरुद्ध हुए युद्ध से हुई बौद्ध धर्म की क्षतिपूर्ति के लिए बहुत से भिक्षु और धर्म ग्रंथ सिंघल भेजे थे। जिसके बदले में उसने भगवान बुद्ध की दंत धातु के लिए अपनी इच्छा प्रकट की। सिंघल ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। जिस दंत धातु पर **स्वेजिगोन का महास्तूप** (पगोडा) श्वेसांडा पगोडा बनवाना आरंभ किया, जिसकी पूर्ति उसके योग्य पुत्र केनजित्था के हाथों हुई।

स्वेजिगान का एक विशाल ठोर स्तूप है। उसके अंदर रखी पवित्र (अस्थियों) के कारण वहाँ भक्तों की काफी भीड़ लगी रहती है। पगान में अब भी एक विशाल बौद्ध मूर्ति है, जिसके दोनों ओर दो मूर्तियाँ हाथ जोड़े जमीन पर घुटने टेक रही है। इनमें से एक केनजित्था है और बौद्ध भिक्षु शिन् अर्हन्। हालाँकि अनिरुद्ध ने अपने राज्य से सभी गैर थेरवादी तत्वों को नहीं समाप्त किया। उसने कुछ महायान प्रथाओं का समर्थन करना जारी रखा।[9] उसने पारंपरिक बर्मी नट आत्माओं की पूजा की अनुमति बौद्ध मंदिरों और पगोडा में भी दी। उसने जनता को नये धर्म को अपनाने हेतु प्रेरित किया। कुछ प्रथाओं में महायान संप्रदाय के बोधिसत्वों अवलोकितेश्वर (लौका नट) तारा और मंजुश्री की पूजा भामिल थी। इस प्रकार बर्मा की राजधानी में संस्कृत के स्थान पर पाली ने स्थान ले लिया। इसके बाद शीघ्र ही एक के बाद एक अतिभव्य विहार और मंदिर भारतीय तथा तैलंग शिल्पाचार्यों के तत्वाधान में बनने लगे। एक नये ऐतिहासिक युग की शुरूआत हुई। अब पगान की प्रसिद्धि स्थविरवाद के केंद्र के रूप में हो गयी। वास्तव में, बर्मा में थेरवाद का प्रसार और प्रभुत्व सदियों से चलने वाली एक क्रमिक प्रक्रिया थी।

बौद्ध धर्म का प्रगति काल: राजा अनिरुद्ध का पुत्र केनजित्था (1084–1112 ई.) अपने पिता की भाँति ही योग्य था। राजसिंहासन पर आरुढ़ होने के बाद उसने श्रीत्रिभुवनादित्य महाराज की उपाधि धारण की। केनजित्था का काल कई विहारों और स्तूपों को बनवाने के लिए प्रसिद्ध है। उसके द्वारा बनवाया गया आनंद विहार काफी प्रसिद्ध है। बर्मा में भारतीय वास्तुशिल्प का यह उत्कृष्ट उदाहरण है। उसके भारत के साथ मैत्री संबंध थे। उसका विवाह वैशाली (उत्तरी बिहार) की राजकुमारी के साथ हुआ था।[10] उसके समय में बोध गया का मंदिर जीर्ण हो गया था। केनजित्था प्रथम बरमी राजा था जिसने बोधगया के मंदिर की मरम्मत कराई। बरमी ग्रंथों से पता चलता है कि राजा ने नानाविध रत्नों को एकत्र कर उन्हें गया के पवित्र विहार के पुनःनिर्माण के लिए भेजा था और उसे पूर्व की अपेक्षा अच्छा बनवा दिया।

किंतु केनजित्था के बाद बर्मा का इतिहास अंधकारमय है। धीरे-धीरे पगान राज्य अपने पतन की ओर उन्मुख हो गया। राजाओं के आपसी झगड़े से शासन करना मुश्किल हो गया और अंततः मंगोल सम्राट कुबलेखां ने पगान पर कब्जा कर लिया। बर्मा के इतिहास मे अगली 13–14वीं सदी का काल अंधकार और विखंड़न से युक्त है। इस समय चार प्रमुख क्षेत्रीय शक्तियों अराकन, अवा, शान और हंथावाड़ी में बँटा हुआ था। शान (उत्तर के घुमंतु लड़ाके) के आक्रमण से बर्मा को काफी क्षति पहुँची, धर्म और विद्या का बहुत ह्रास हुआ। उन्होंने पेगू (दक्षिणी बरमा) को अपना केंद्र बनाया। किंतु, इस सांस्कृतिक परिवेश से वे भी अछूते नहीं रहे, उनका एक राजा **थीहथू** एक पीढ़ी बीतते-बीतते बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया।

13वीं सदी के अंत में बौद्ध धर्म तिब्बत के पहाड़ों से आगे तक फैल चुका था। कुबले खाँ स्वयं बौद्ध था।[11] थीहथू ने 1312 ई. में पिन्या को अपनी राजधानी बनाया। उसने बौद्ध धर्म को संरक्षण दिया, धीरे-धीरे वहाँ कई विहार बन गये और हजारों भिक्षु रहने लगे। शानों में कितने ही लोग तांत्रिक महायान के अनुयायी थे।[12] इसी प्रकार अराकान पर मरौक यू राज्य का शासन था, जिन्होंने थेरवाद बौद्ध धर्म को संरक्षण दिया। वहीं दूसरी ओर उत्तरी बर्मा में अवा साम्राज्य था, वहाँ भी बौद्ध नेताओं में वृद्धि हुई। अवा राजाओं ने संघ का समर्थन किया, किंतु, एक शासक **थोहनबबा** ने कई मठों व मंदिरों को लूटा तथा बौद्ध भिक्षुओं का नरसंहार कर दिया।[13] इसके बावजूद अरियावंश ने बर्मीज भाषा में कुछ रचनाएँ लिखी और इस प्रकार वह उस भाषा में बौद्ध रचनाएँ करने वाले पहले व्यक्ति थे। निचले बर्मा के मोन साम्राज्य में हंथावाड़ी (रामानदेसा) था, उनमें राजाओं में महान धम्मचेदी (1471-1492) था। कल्याणी शिलालेखों के अनुसार उसने बौद्ध भिक्षुओं को श्रीलंका भेजकर बौद्ध संघ का व्यापक सुधार किया।

धीरे-धीरे बौद्ध धर्म बर्मा में प्रसारित होने लगा। 17वीं 18वीं शताब्दी में थेरवाद प्रथाएँ क्षेत्रीय रूप से अधिक विकसित हुई। थेरवाद परंपरा के शाही समर्थन व शान पहाड़ी क्षेत्र की शांति के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में मठों का विकास हुआ। ये मठ शिक्षा के केंद्र बने। शिक्षा के विकास होने से बौद्ध ग्रंथों को लिखने व लिखने की लागत कम हो गई और वे आसानी से उपलब्ध हो गये। जिससे बौद्ध धर्म आसानी से आम जनता तक पहुँच सका। साथ ही गैर बौद्ध संस्कार व प्रथाएँ भी प्रचलित रही।

ब्रिटिश प्रशासन के दौरान (1824-1948) सरकारी नीति धर्मनिरपेक्ष थी अर्थात् बौद्ध धर्म को शासन द्वारा संरक्षण नहीं दिया जाता था। ईसाई मिशनरियों व मिशनरी स्कूलों की उपस्थिति भी बढ़ गयी थी। जिसके कारण बौद्धों व ईसाइयों के बीच तनाव बढ़ गया। औपनिवेशिक युग में बरमी बौद्धों के बीच यह अवधारणा थी कि बौद्ध धर्म खतरे में है। जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में पूरे देश में एक व्यापक सुधार आंदोलन हुआ। इसमें बौद्ध प्रकाशन, उपदेश, शाकाहार, बौद्ध शिक्षा, नैतिक व धार्मिक सुधार आदि शामिल थे। इस दौरान ईसाई मिशनरियों के धर्मांतरण प्रयासों का व्यापक विरोध हुआ। इस लड़ाई में एक लोकप्रिय आयरिश बौद्ध भिक्षु **"यू धम्मलोक"** थे, जिन्होंने उपनिवेशवाद व ईसाई मिशनरियों के खिलाफ कार्य किया। बरमी लोगों के लिए बरमी राष्ट्रवाद उनकी बौद्ध पहचान से जुड़ा था। स्वतंत्रता आंदोलन का एक आम नारा था- बरमी होने का अर्थ बौद्ध होना है।[14]

आधुनिक युग में बौद्धः 1948 में जब बर्मा ने ब्रिटेन से स्वतंत्रता प्राप्त की, सैन्य व नागरिक दोनों सरकारों ने बरमी थेरवाद बौद्ध धर्म का समर्थन किया। इसके लिए 1948 में धार्मिक मामलों का मंत्रालय भी बना। प्रथम बरमी प्रधानमंत्री **यू नू** समाजवादी होते हुये

एक कट्टर बौद्ध थे जिन्होंने एक बौद्ध समाजवाद को बढ़ावा दिया। उन्होंने बौद्ध धर्म को राज्यधर्म बनाने का भी नेतृत्व किया। **यू नू** ने उपोस्थ दिनों को सार्वजनिक अवकाश भी दिया, पशु वध पर प्रतिबंध लगाया और कुछ मौत की सजा भी कम की। बरमी संसद में 26 अगस्त, 1961 को राज्य धर्म संवर्धन व समर्थन अधिनियम पारित कराया।

इस प्रकार एक लंबे उतार और चढ़ाव को पार करते हुए बौद्ध धर्म समस्त म्यांमार में प्रचलित हो गया। म्यांमार की संस्कृति बौद्ध धर्म से अविभाज्य है। बरमी नव वर्ष (थिंग्यान) जिसे जल महोत्सव के रूप में मनाया जाता है, की उत्पत्ति भारतीय परंपराओं से हुई है। इसी प्रकार वेसाक सभी अवकाशों में पवित्र है क्योंकि यह बुद्ध के जन्म, जागृति व मृत्यु का प्रतीक है। बौद्ध ध्यान, बर्मा में लोकप्रिय व व्यापक बौद्ध अभ्यास है।

भारत–बर्मा (म्यांमार) संबंधों का समसामयिक महत्व: भारत का पड़ोसी देश होने के कारण भारत का म्यांमार से आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक महत्व जुड़ा है। भारत के पूर्वोतर राज्यों से सीमा साझा होने के कारण इन राज्यों के आर्थिक विकास व परिवर्तन हेतु संबंधों का प्रगाढ़ होना आवश्यक है। एक तरफ चीन की तत्परता भारत के लिए चिंता का विषय है, वहीं पूर्वोतर क्षेत्र में अलगाववादी तत्वों व घुसपैठ की संभावनाओं के कारण भारत–म्यांमार संबंधों को मजबूत बनाना अनिवार्य है।

दक्षिण पूर्वी एशिया के बीच सेतु के रूप में म्यांमार ने भारत को आकर्षित किया है। बौद्ध धर्म, व्यापार, बॉलीवुड, भरतनाट्यम व बर्मा का टीक (साल का वृक्ष) वे 5 बी है जो आम जनता की दृष्टि से दोनों देशों के संबंधों का निर्माण करते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो बर्मा के लोग भारत को अपनी धर्म भूमि के रूप में पूजते हैं। भारत के बौद्ध स्थलों पर बर्मा के बौद्धों का खासा आकर्षण है। भारत की **बुद्धिस्ट सर्किट** पहल, जिसका उद्देश्य ही भारत की प्राचीन बौद्ध विरासत स्थलों को एक साथ जोड़कर विदेशी पर्यटकों के आगमन को दुगुना करना है, यह योजना बौद्ध बहुल म्यांमार के साथ संबंधों को संचारित कर सकती है। बौद्ध सर्किट के भीतर यात्रा की सुविधा के लिए आईआरसीटीसी द्वारा बुद्ध पूर्णिमा एक्सप्रेस विशेष ट्रेन भी शुरू की गई है। इससे भारत की कूटनीतिक पकड़ मजबूत होगी। बौद्ध धर्म दोनों देशों के न केवल सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करता है वरन् उनके राजनीतिक, आर्थिक, सामरिक संबंधों को भी मजबूती प्रदान कर सकता है।

निष्कर्ष: भारत और म्यांमार के बीच प्राचीन काल से ही घनिष्ठ सांस्कृतिक संबंध हैं, जिनमें पोशाक और धार्मिक रीति–रिवाज समान हैं। भारत से म्यांमार में बड़ी आबादी का आगमन औपनिवेशिक युग के दौरान हुआ जब अंग्रेज प्रशासनिक और शरीरिक श्रम दोनों के लिए भारतीयों की भर्ती करते थे। भारत–म्यांमार संबंधों में गहरे ऐतिहासिक, जातीय, सांस्कृतिक और धार्मिक संबंध हैं। भगवान बुद्ध की भूमि और तीर्थस्थल के रूप में भारत

म्यांमार के लिए महत्व रखता है। दोनों देशों के बीच निकटता ने मैत्रीपूर्ण संबंधों को बढ़ावा दिया है और लोगों से लोगों के बीच संपर्क बढ़ाया है। दक्षिण–पूर्व एशिया के देश म्यांमार के अधिकांश नागरिक थेरवाद बौद्ध हैं। देश का लगभग 90% हिस्सा बौद्ध है, और अधिकांश बहुसंख्यक जातीय समुदाय के सदस्य हैं जिन्हें बर्मन के नाम से जाना जाता है। म्यांमार में बौद्ध धर्म का एक अनूठा पहलू आम लोगों के बीच ध्यान आंदोलनों का विकास रहा है। परंपरा रूप से, ध्यान अभ्यास मठवासी अभिजात वर्ग के लिए आरक्षित था। सामान्य धार्मिक प्रथा में बड़े पैमाने पर भिक्षाटन करने वाली भिक्षुओं को दान देना शामिल था। हालाँकि, ब्रिटिश उपनिवेशवाद के तहत, पहली बार बड़ी संख्या में आम लोगों को ध्यान सिखाया गया, यह अभ्यास आज भी जारी है। प्रमुख बर्मी ध्यान शिक्षकों ने पूरी अमेरिका और यूरोप में बौद्ध धर्म के अभ्यास को भी प्रभावित किया है, विशेष रूप से ध्यान की शैली में जिसे **विपश्यना या अंतदृष्टि ध्यान** के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार भारत–म्यांमार संबंधों को मजबूती प्रदान करने में बौद्ध धर्म एक कड़ी के रूप में है।

संदर्भः

1. सत्यकेतु विद्यालंकार, दक्षिण पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 1
2. राहुल सांकृत्यायन, बौद्ध संस्कृति, आधुनिक पुस्तक सदन, कलकत्ता, 1952, पृ. 46
3. जी. ई. हार्वे, हिस्ट्री ऑफ बर्मा, एशियाई एजूकेशनल सर्विसेज, नई दिल्ली, 1925, पृ. 6
4. श्वेता गुप्ता और धनंजय पाठक, संपा. भारत की विदेश नीतिः निरंतरता और परिवर्तन, पुस्तक भारती, टोरंटो कनाडा, पृ. 111–12
5. एपिग्राफिका इंडिका, भाग–20, पृ. 22–23, उद्धृत राहुल सांकृत्यायन, वही, पृ. 47
6. राहुल सांकृत्यायन, वही, पृ. 47 https://www.lkouniv.ac.in
7. सत्यकेतु विद्यालंकार, वही, पृ. 289
8. राहुल सांकृत्यायन, वही, पृ. 51
9. रार्बट ई. बसवेल (बौद्ध धर्म का शब्दकोश), प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, 2013, पृ. 43
10. सत्यकेतु विद्यालंकार, वही, पृ. 295
11. राहुल सांकृत्यायन, वही, पृ. 58
12. निहार रंजन रे, थेरवादी बुद्धिज्म इन बरमा, कोलकाता, युनिवर्सिटी प्रेस, 1946, पृ. 170–71
13. वही, पृ. 196–97
14. https://en.wikipedia.org

❑❑

प्रवासी साहित्यकार : संस्कृति व लोकजीवन से उत्साह का संवरण

संदीप कुमार मिश्र

बोया बीज जन्मभूमि में
कर्मभूमि में पलता है
यही प्रवासी की नियति है,
मातृभूमि का यह जीवनदान।
जन्मभूमि तू मेरी आन, स्वीकारों शत-शत परनाम[1]

'भारत मेरा महान' (मनीषा रामरक्खा, फ़ीजी)

हिंदी साहित्य के विविध विमर्शों में प्रवासी विमर्श का विचारण एवं लेखन का आकर्षण साहित्यिक उद्भुत विमर्शों में प्रमुख रहा है। यह विमर्श उन भारतीयों की पीड़ा व वेदना को रुपायित करता है जो किन्हीं कारणों से अपने स्वदेश से विस्थापित रहे हैं। उनकी मार्मिक व्यथा एवं कारुणिक त्रास ने साहित्य के रूप में विविध विधाओं यथा-उपन्यास, कहानी व कविता आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति प्राप्त की है।

'तन समर्पित, मन समर्पित और यह जीवन समर्पित' की भावना से ओत-प्रोत देश के प्रत्येक नागरिक का समर्पण राष्ट्र के प्रति उनके समर्पण और संवेदनशीलता को प्रस्तुत करता है, किंतु जब कोई मानस इस अकिंचन की भावना का रूपांतरण राष्ट्र हित में नहीं कर पाता है तो आद्योपांत उसके अपने जीवन में अपने कर्तव्य के प्रति अल्पता महसूस होती है और इसकी पूर्णता हेतु रचनाकार अपनी लेखनी की धार से अपने समर्पण को व्यक्त करता है। उसी लेखनी व लेखकीय समर्पण के ही एक विमर्श के रूप में जो साहित्य निर्मित होता है, उसे 'प्रवासी साहित्य' के रूप में अभिहित किया जा सकता है। आज के समय में 'प्रवासी' शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता है जो एक बेहतर जीवन की तलाश में स्वदेश छोड़कर दूसरे देश में बस गए और इन्हीं के द्वारा रचित साहित्य प्रवासी साहित्य कहलाता है। अपनी रचनाधर्मिता में यह परंपरा अपनी गहरी जड़ें जमा चुकी है। संप्रति प्रवासी साहित्य

पहले के प्रवासी साहित्य से भिन्नता धारण करता है। जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी व तकनीकी में विकास व समृद्धि संभव हुई वैसे-वैसे प्रवासी साहित्य भी वैविध्यपूर्ण व जनप्रिय होता गया।

मनुष्य अपना सर्वांगीण विकास तभी कर सकता है, जब वह अपनी संस्कृति, भाषा व समाज के अंतरतम से जुड़ा होता है। प्रवासी हिंदी साहित्यकार अपनी संस्कृति और लोकजीवन के साथ पूर्ण निष्ठा से संपृक्त रहते हैं और पराए परिवेश में रहते हुए भी अपनी संस्कृति को अपने हृदय तल में अक्षुण्ण बनाए रखते हैं। उनका मन बस यही कहता है कि-

मेरी धड़कनों में बसी सौगात
मेरे देश की मुझे खुशबू
मेरे देश की मिट्टी की आती है
पल-पल यादें आती हैं।[2]

प्रवास की प्रक्रिया एक ही समय, व्यक्ति, देश-विदेश से संबंधित होने के कारण वैश्विक स्वरूप प्राप्त कर चुकी है। प्रायः किसी भी देश के लोग आर्थिक विचलन की स्थिति में प्रवास-प्रवृत्ति के शरणागत होते हैं। प्रवासी मनोवृत्ति के पीछे पश्चिमी पूंजीवादी विचाराधारा व व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रवासी साहित्यकार अपने स्वदेश से दूर रहकर भी नॉस्टेल्जिक रहते हैं, इस कारण उनका साहित्य भी इस मनोभाव से अप्रभावित भी नहीं रहा। अपने देश की मिट्टी से पृथक होने के बावजूद भी उसकी स्मृतियों में रचे-बसे रहना और उसे अक्षुण्ण बनाए रखना स्वाभाविक ही है।

विदेशी पृष्ठभूमि ने प्रवासी हिंदी साहित्य के क्षेत्र को विस्तृत वितान प्रदान किया है। प्रवासी हिंदी साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से हिंदी और उसके साहित्य को वैश्विक आधार प्रदान किया है, जिसने भारतीय हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में महनीय भूमिका निभाई है- चाहे वह मॉरीशस का हिंदी साहित्य हो या सूरीनाम का, चाहे फ़ीजी का हो या त्रिनिदाद का, चाहे इंग्लैंड का हो या अमेरिका का। मॉरीशस में अभिमन्यु अनत, गुलशन गंगाधर सिंह और सुखलाल, फ़ीजी में आलोक शर्मा, जैनन प्रसाद, त्रिनिदाद में आशा मोर, दक्षिण अफ्रीका में अमिताभ मित्रा, रूस में अनिल जनविजय, जापान में प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण, इंडोनेशिया में अशोक गुप्ता, राजेश कुमार सिंह, अमेरिका में उषा प्रियंवदा, सुधा ओम ढींगरा, रजनी भार्गव, अचला शर्मा और सौमित्र सक्सेना आदि, ब्रिटेन में तेजेन्द्र शर्मा, उषाराजे सक्सेना, ज़किया ज़ुबेरी और दिव्या माथुरा आदि, कनाडा में अवतंस कुमार, अश्विनी गांधी, चंद्रशेखर त्रिवेदी और सुभाष कुमार घई आदि, खाड़ी देशों में रामकृष्ण द्विवेदी मधुकर, दीपिका जोशी संध्या, कृष्ण बिहारी, आरती पाल बघेल, मीरा ठाकुर और स्वाति भालोटिया आदि ने अपनी रचनाओं में 'भारतीयता' को सुरक्षित रखा है।

हिंदी साहित्य की प्रत्येक धारा उसी में समाहित होकर एक राष्ट्रीय भाषा हिंदी की अनाविल सरिता बनकर प्रवाहित होगी, तभी वह सैलाब वैश्विक पटल पर अपना स्थान निश्चित कर सकेगा। हिंदी साहित्य को विश्व के कोने-कोने तक प्रचारित एवं प्रसारित करने और विश्व का कोना-कोना हिंदी साहित्य में समाहित करने का श्लाघनीय कार्य केवल प्रवासी साहित्य के माध्यम से ही संभव है।

इस साहित्य के माध्यम से न केवल वैदेशिक संवेदनाओं का पता चलता है अपितु विदेश में भारत के प्रति निर्मित और बदल रही अवधारणाओं तथा चिंताओं का भी रचनात्मक आभास प्राप्त होता है। अपने मातृ परिवेश से दूर रहकर भी प्रवासी साहित्यकार ने अपनी पारिवारिक स्थिति, उसकी कर्तव्य-परायणता, समर्पण, त्याग तथा अपनी नैतिक दृष्टि को उपेक्षित नहीं किया है। अपनी विवशता, पीड़ा व उससे उत्पन्न आंतरिक दबाव में भी अपनी सर्जना के माध्यम से यथार्थ चित्रण किया है। भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति मानव की सहजात प्रवृत्ति है। यही कारण है कि ये प्रवासी भारतीय साहित्यकार जहाँ अपनी भाषा की सुरक्षा, संरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए समाजिक और राजनीतिक स्तर पर निरंतर प्रयत्नशील हैं वहीं भावना और विचार के स्तर पर कटिबद्ध भी-

संस्कृति-भाषा को लेकर,
हवन-यज्ञ वेदों की ध्वनि से,
घर-घर रामायण का प्रचार,
किया फ़ीजी का पूर्ण विकास
जन्मभूमि तू मेरी आन, स्वीकारो शत शत परनाम।[3]

देवी प्रसाद तिवारी के अनुसार, "भारतवंशी सदैव अपने मूलदेश के संपर्क में रहते हैं और समय-समय पर अपने मूल देश के प्रति सम्मान का भाव भी प्रकट करते रहते हैं। गिरमिटिया भारत से तो गए लेकिन अपने साथ भारत की संस्कृति, सभ्यता और भाषा को भी लेकर गए। उन्होंने अपनी भाषा और संस्कृति को सदैव सर्वोपरि रखा। संघर्ष के दौर में भी अपनी भाषा को नहीं भूले।"[4]

प्रवासी हिंदी साहित्य भारतीयों के पलायन व उनकी दरपेश विसंगतियों के अलावा उनके जीवन संघर्ष की महागाथा को अभिव्यक्त करता है। आधुनिक व संप्रति प्रवासी हिंदी कथा साहित्य पर दृष्टिपात करें तो भारत के बाहर विश्व के अनेक देशों में हिंदी कथा साहित्य अपने रचनात्मक प्रकर्ष पर है। मॉरीशस, सूरीनाम और फ़ीजी में इसकी उपस्थिति तो थी ही अब कनाडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, डेनमार्क, अर्जेंटीना, नार्वे, जापान और अबूधाबी आदि में विस्तृत परास के साथ प्रसारित है।

सुधीर पचौरी के अनुसार, "प्रवासियों में एक विभक्त भाव होता है एक ही वक्त में दो दुनियाओं को पुकारता है। एक वह जो डॉलर कमाने, विदेश पलट होने, अमीर होने के लिए वह परदेस में नाना कष्ट सहता अपने देश को याद करता रहता है। दूसरा वह जो याद आने वाले 'देश' के यथार्थ को भी जानता है जिससे उबकर वह 'परदेश' भागा था। परदेश में उसका 'देश' प्रेम जोर मारता है और देश में परदेस प्रेम। पूंजीवादी सभ्यता की मारकाट वाली स्पर्धा, हर वक्त की असुरक्षा, अकेलापन उसे डॉलर देती है। कहीं न कहीं सभी प्रवासी अपनी मूल संस्कृति, मूल परंपरा और मानस से स्वभावतः या प्रकृतिजन्य रूप से जुड़े रहना अवसरों कुअवसरों पर बाहर भी झांकने लगता है। परंराएँ, रीति-रिवाज़, लोक जीवन में रची-बसी गहरी आकृतियाँ, मौसम-बेमौसम हमारे व्यवहार, हमारी स्मृति और हमारी पहचान को उकेरती रहती हैं। भाषा का इस एहसास से बड़ा सीमित-सा रिश्ता रह जाता है। सिर्फ उन लोगों में भाषा इस एहसास का अहम हिस्सा बनती है जो काफी देर से, परिपक्वावस्था में अपना परिवेश छोड़कर यहाँ आ बसे। आधे मन से वह उसमें लगता है लेकिन वह यह भी चाहता है कि डॉलर रहे संग में अपना गाँव भी रहे तो मजा है। इस तरह प्रवासी भाव देश-परदेस के बीच विभाज्य भाव है।"[5] प्रवासी जीवन की विडंबना यह है कि एक तरफ़ उन्हें उनके देश की संस्कृति एवं परंपरा से भी गहरा लगाव रहता है दूसरी तरफ़ उनमें बेहतर जीवन जीने की उत्कट लालसा भी रहती है, जिसके कारण उन्हें दोहरा संघर्ष करना पड़ता है। प्रवासियों की इसी मनोदशा को व्यंजित करते हुए डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव ने 'मिसेज जॉन्स' और 'वह गली' कविता संकलन की भूमिका में लिखा है, "प्रवासियों को दोहरा संघर्ष करना पड़ता है, एक तो अपने को नई ज़मीन में रचने-बसाने का, दूसरे अपनी ज़मीन को अंदर बनाए रखने का।"[6]

प्रवासी एक साहित्य ही नहीं प्रवासी साहित्यकार के चित्त से निःसृत समीक्षा है जो निरंतर दो संस्कृतियों से परिचित होने के कारण उन संस्कृतियों को बोधगम्य बनाती है। जिस परिवेशगत वातावरण में साहित्यकार रहता है, अपने संस्कार को वहाँ जीवंत रखने का प्रवास करता है और अपनी साहित्य सर्जना के माध्यम से हिंदी भाषा और अपनी संस्कृति को जीवित रख, उसे आधार बनाकर प्रवासी साहित्य का लेखन करना भारतीय संस्कारों और भारतीय संस्कृति के रूप में निरूपित किया जा सकता है। इस संदर्भ में कमल किशोर गोयनका लिखते हैं, "प्रवासी हिंदी साहित्य की संवेदना, परिवेश, जीवन दृष्टि एवं लेखकीय दृष्टिकोण हिंदी पाठकों को एक नए प्रकार का आस्वादन कराता है तथा पाठक एक नई दुनिया से परिचित होता है। भूमंडलीकरण के इस दौर में वह देशवासियों के विदेश में रहने के सुख-दुःख को प्रामाणिकता के साथ अनुभव कराता है। इस प्रकार प्रवासी हिंदी साहित्य वास्तव में एक साहित्यिक सेतु है, जो प्रवासियों को अपनी मातृभूमि से तथा भारतीयों को प्रवास में गए अपने भाई-बहनों से जोड़ता है। साहित्य से ही ऐसा आत्मिक मिलन संभव है।

अतः इस प्रवासी हिंदी साहित्य को स्वतंत्र अस्तित्व के साथ इसे भारत के हिंदी साहित्य का अनिवार्य अंग मानना होगा।"[7]

गिरमिटिया प्रवासियों ने भारतीय संस्कृति व सभ्यता को जीवंत बनाए रखने के लिए अपना सर्वोत्तम प्रयास किया। भारतीय संस्कृति में उनकी उत्कट और विराट आस्था ने उनमें नैराश्य उत्पन्न होने नहीं दिया। हिंदी भाषा की प्रवृत्ति सामंजस्य की है, यही कारण है कि जो भी भाषा हिंदी के गुरुत्व क्षेत्र के निकट पहुँची वह हिंदी भाषा की परिधि में समाहित हो गई। हिंदी भाषा की विशिष्टता को रुपायित करते हुए विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं, "हिंदी की अंतिम विशेषता यह है कि वह जोड़ने को ही अपना मुख्य कर्म समझती रही है। उसने तोड़ने की शक्तियों की चुनौती स्वीकार करते हुए बराबर जोड़ने का काम किया है। उसकी इस संधि शक्ति में विनम्रता का स्वर रहा है।"[8]

हिंदी को अंतरराष्ट्रीय अस्मिता और पहचान दिलाने में प्रवासी हिंदी साहित्यकारों के अभूतपूर्व योगदान की जितनी भी तारीफ़ की जाए कम है। प्रवास में सृजित किये जा रहे हिंदी साहित्य की अपनी एक अलग प्रवासी संवेदना है। उसमें भारतीय मन अवस्थित है और साथ ही उसकी अपनी विशिष्ट प्रवासी सोच है।

वस्तुतः प्रवासी हिंदी साहित्यकार अपना संवेदनात्मक और भावात्मक संस्कार अपने लोक जीवन व सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से ग्रहण करते हैं। अतः प्रवासी हिंदी साहित्यकार जब अपने कुटुम्ब और अपनी धरा की मिट्टी से पृथक होकर एक अपरिचित देशकाल और वातावरण में प्रवेश करता है तो वहाँ उनके नवीन संस्कार और दृष्टिकोण निर्मित होते हैं। प्रवासी हिंदी साहित्यकारों की कृतियों में विचार, संवदेना और यथार्थपरक दर्शन के साथ संस्कृतियों को टकराहट और भूमंडलीकरण का चतुर्दिक दबाव दृश्यमान होता है। प्रवासी हिंदी साहित्य के मूल में जिस अकुलाहट, बेचैनी, कुंठा और त्रासदी को महसूस किया जाता है उसे परंपरा एवं अपनी संस्कृति से विच्छेदित होने के संदर्भ में रूपित किया जा सकता है। भारतीय एवं पश्चिमी संस्कृति के मध्य दोलायमान प्रवासी भारतीयों के मानसिक द्वंद्व का निरूपण प्रवासी हिंदी साहित्य में अभिव्यक्त है। प्रवासी साहित्यकारों की उपादेयता इसलिए भी बढ़ जाती है क्योंकि उनकी रचनाओं में अलग-अलग देशों की विभिन्न परिवेशगत स्थितियों का वर्णन मिलता है, जिससे हिंदी साहित्य का वैश्विक विकास संभव होता है।

संदर्भः

1. भारत मेरा महान (कविता), मनीषा रामरक्खा, फ़ीजी
2. पल पल याद आती है, कमल सुनृत वाजपेयी, पृ. 24

3. भारत मेरा महान (कविता), मनीषा रामरक्खा, फ़ीजी

4. हिंदी भाषा के विस्तार में प्रवासियों की भूमिका, देवी प्रसाद तिवारी, प्रवासी जगत पत्रिका, खंड-6, अंक-4, जुलाई-सितंबर-2023

5. प्रवासी हिंदी साहित्य लेखन, डॉ. सुशील कुमार शर्मा, साहित्य-कुंज पत्रिका, अंक-166, 1 अक्टूबर 2020

6. मिसेज जॉन्स और वह गली, काव्य संकलन, भूमिका, डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव

7. हिंदी का प्रवासी साहित्य, डॉ. कमल किशोर गोयनका, अमित प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 41

8. स्मारिका, 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस, 18-20 अगस्त, 2018, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 47

❑❑

अभिमन्यु अनत के काव्य में युगीन परिदृश्य

आशा मीणा

अभिमन्यु अनत मॉरीशस के प्रख्यात साहित्यकार रहे हैं। अभिमन्यु अनत एक कहानीकार, उपन्यासकार, कवि और नाटककार के रूप में जाने जाते हैं। लेखन के साथ-साथ वे चित्रकारिता में भी रुचि रखते हैं। वे केवल कोरी कल्पना में जीने वाले एक साहित्यकार ही नहीं है बल्कि उनका साहित्य यथार्थ की पृष्ठभूमि पर टिका हुआ दिखाई देता है। उनके साहित्य में समाज की युगीन परिस्थितियाँ और समस्याएँ दिखाई देती हैं जिनसे पाठक रू-ब-रू होता है। "सामान्यत: किसी भी साहित्यकार या कलाकार के व्यक्तित्व को जानने के लिए हमें तीन बातों का ध्यान रखना पड़ेगा- युग चेतना, मन के संस्कार और जीवन की परिस्थितियाँ। इन्हीं तीनों उपादानों से साहित्यकार का व्यक्तित्व सँवरता है। एक और प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर साहित्यिक परंपराओं का भी पड़ता है।"[1]

अभिमन्यु अनत के साहित्य में हमें युगीन परिदृश्य साहित्यिक विधाओं में दिखाई देते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्ति के जीवन के टेढ़े-मेढ़े रास्ते, अनुभवों, आशा-निराशा और सुख-दुख की अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। वर्तमान युग में हमें कविता का क्षेत्र बदलता हुआ दिखाई देता है क्योंकि आज का समय बदल गया है। आज कविताओं के वर्ण्य विषय भी बदल गए हैं, उनके मानक भी बदल गए हैं। आज की कविता को युग की कविता कहा जा सकता है। अपनी कविताओं के संदर्भ में लेखक कहते हैं- "आज की कविता जहाँ छटपटाहट के लिए विरोध करती है वहाँ प्रश्न भी उछाल दी है पर इससे भी बड़ी भूमिका आज की कविता कि यह है कि वह अपने सामने घटाटोप या कुंहासे को इस तरह चीरकर आगे निकलती है जिससे सामने की सारी चीजें जो अब तक अंधेरे में छुपी हुई थी सामने स्पष्ट दिखाई देने लग जाती हैं।"[2]

अभिमन्यु अनत के अभी तक कई कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'नागफनी में उलझी सांसें' (1977), 'कैक्टस के दाँत' (1982), 'एक डायरी बयान' (1985), गुलमोहर खौल उठा (1984), 'लरजते लम्हें' (अप्रकाशित)। लेखक ने अपने काव्य में समसामयिक परिस्थितियों, ऐतिहासिक बोध, आर्थिक विषमताओं और राजनीतिक व्यवस्था

पर व्यंग्य करते हुए व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया हैं। 'नागफनी में उलझी साँसे' कविता में लेखक ने सामाजिक विषमता, ऐतिहासिक, पारस्परिक भाव-बोध, राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक व्यवस्था से उपस्थिति समस्याओं को अभिव्यक्त किया है। यह कविताएँ समाज की सामाजिक व्यवस्थाओं पर तीखे प्रहार करती है। इनकी कविताओं में विद्रोह एवं आक्रोश का भाव भी दिखाई देता है। कवि के मन में विद्रोह और जो आक्रोश की भावना है वह देश के अतीत के कारण नहीं बल्कि देश की वर्तमान समस्याओं के कारण है। जो शोषण अत्याचार और यातना समाज में पहले व्याप्त थी आज भी समाज उन्हीं समस्याओं से चारों ओर से घिरा हुआ है। इसीलिए अनंत जी उन्हें जनता की खामोशी आत्मा का जनकवि कहते हैं। "कविताओं के प्रस्तुत संकलन में कवि एक ओर व्यथाओं की गठरी लादे 'दूसरी हिरोशिमा' का विकल्प तलाशता नजर आता है। तो दूसरी और वह पीछे छोड़ 'गूँगे इतिहास' को आज भी बोआई करते हुए सामने देखता है। वह ऐसे क्षणों का एहसास कराता है जिनमें 'आश्वासनों का पर्वत' पिघलता रहता है और खुद उसकी 'अस्मिता चिता पर चढ़ती रहती है।' संतोष को पीते-पीते अपने को निर्जीव सा अनुभव करने पर भी वह यह बताना नहीं भूलता कि पता नहीं कब 'साँसो की बौराई हुई खामोशी गरज उठे' और 'बाँझ व्यवस्था में विस्फोट हो जाए।"[3]

मॉरीशस में भारतीय मजदूरों को अनेक यातनाएँ देकर प्रताड़ित किया जाता था। मॉरीशस की आजादी के बाद भी वहाँ की सामाजिक परिस्थितियों में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं आया है। औपनिवेशिक मानसिकता वहाँ अभी भी फैली हुई है। उनके बीच संघर्ष करने का यह क्रम कई स्तरों में बँट गया है जो समाप्त होता हुआ दिखाई नहीं देता है। मेहनत मजदूरी करने के बावजूद भी उन्हें पूरी मजदूरी नहीं दी जाती है जिससे जीविकोपार्जन करने के लिए उन्हें बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। अपने परिवार का भरण-पोषण भी भली-भाँति नहीं कर पाते हैं। उचित वेतन नहीं मिलने के कारण उन्हें गरीबी का सामना करना पड़ता है और बहुत सी यातनाएँ सहनी पड़ती है। उन गरीब मजदूरों की इस पीड़ा को कवि ने अपनी कविता 'नागफनी में उलझी साँसे' कविता संग्रह की कुछ पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त किया है-

"तुमने, आदमी को खाली पेट दिया
ठीक किया
पर एक प्रश्न है रे नियति
खाली पेट वालों को
तुमने घुटने क्यों दिए?
फैलाने वाला हाथ क्यों दिया?"[4]

अभिमन्यु अनंत एक ऐसे कवि हैं जो अपने जीवन में निरंतर संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते रहे हैं। जब मजदूर लोग मॉरीशस गए तब कुछ ऐसे स्वार्थी लोग जमीदारों के साथ मिलकर गरीब मजदूर लोगों का निरंतर शोषण करते, उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ देते। उन गरीब मजदूर लोगों का शोषण तब किया जाता था जब तक उनके स्वार्थ सिद्ध नहीं हो जाते थे। कवि अपनी कविताओं के माध्यम से उन मजदूर लोगों की मन की पीड़ा, उनका दर्द, उनकी अपमान की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

"तुम भी शहर के बीच के जंगल के राजा थे
मैं दास या बंधेज के कारण
आँड्रोक्लस की तरह मुझे भी तुम पर दया आई
मैंने भी तुम्हारे पैर से काँटा निकाला
तुम जंगली पशु नहीं थे आदमी थे
इसीलिए तुम आज भी मुझे दबोचे हुए हो
अपने शहर के बीच के जंगल में।"[5]

एक लंबी दास्ता के पश्चात मॉरीशस का इतिहास मुक्त हुआ दिखाई देता है लेकिन आज भी इतिहास लेखन व्यवस्था के हाथों एवं संकेत पर चलता हुआ दिखाई देता है। आम आदमी एवं सामाजिक जनजीवन से इसका किसी भी प्रकार का कोई संबंध दिखाई नहीं देता है। इस कारण कभी इतिहास और इतिहास विधाता पर करारा व्यंग करते हुए कहते हैं–

"आज का कोई इतिहास नहीं होता
कल का जो था
वह जप्त है तिजोरियों में
और कल का जो इतिहास होगा
वह इतिहास को नकारने का इतिहास होगा
अधगले पंजरों पर
सपने उगाने का।"[6]

कवि अपनी कविताओं के माध्यम से आज के युवा वर्ग को इतिहास से वर्तमान को समझने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वे उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि अब तक जो होना था वह हो गया, वह पुणे घटित नहीं होना चाहिए इसके लिए आज के युवा वर्ग को चित्कार करने की आवश्यकता है। जिम्म आनी अतीत समय में आर्थिक विषमताओं के कारण हमारे बुजुर्ग लोग विरोध करने में असमर्थ होते थे उस प्रकार की असमर्थता आज दिखाई नहीं देनी चाहिए। वह पुराना इतिहास उन्हें नहीं दोहराना चाहिए। गुलामी की एक नवी श्रृंखला देश में रही है। कवि के मन में वर्तमान समय को लेकर अनेक प्रकार की अपेक्षाएँ थी जो पूरी होती

हुई दिखाई नहीं देती है जिसके कारण कवि का मन दुखी होता है। आजाद होने के बावजूद भी मनुष्य के पास अपना कुछ कहने के लिए नहीं है। मनुष्य की ऐसी मनःस्थिति के बारे में सोचते हुए कवि कहता है–

"मैं जो कभी कुली था आज उसकी संतान हूँ
जिसे प्राप्त है विरासत में, लंबा इतिहास
जिसमें यह सभी घर अपने हैं
क्योंकि अपना कोई विशेष घर नहीं।
हिंद महासागर भी अपना है, शमशान के रास्ते मेरे कंधे पर
मुड़िया पहाड़ की लाश है, मुड़िया पहाड़ इतिहास है
वह अर्थी मेरी है।
पर्यटकों की बाहों में, वह मेरी बहन है
समुद्र किनारे के ये सारे बंगले, मेरी अपनी ही
भव्य समाधियाँ है।"[7]

'गूंगा इतिहास' कविता में भी कभी नहीं मनुष्य की इस पीड़ा को बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है–

"प्रसुप्त ज्वालामुखी का धुंधलका
पेट में एक खाली कुआं, तार-तार हुआ फेफड़ा
उलझी हुई साँसे, गिरवी आत्मा
पैबंध लगा वर्तमान, बारह अध्याय का यह इतिहास
आज भी अकुला रहा है,
खेतों में पसीने की जमी हुई परत पर
जहाँ-तहाँ लाल बूंदे, चमक रही हैं
उस बैलगाड़ी के पहियों के निशान, अब भी है पगडंडी पर
जो गुजर गई ईख का बोझ लिए, शक्कर का खाली बोरा ओड़े
इतिहास आज भी बोआई कर रहा है।"[8]

कवि के मन में समाज की व्यवस्था के प्रति असंतोष दिखाई देता है। कवि पुरानी व्यवस्था से छुटकारा पाने का संकेत करता है क्योंकि समाज की पुरानी व्यवस्था की जटिलता के कारण वर्चस्व शैली व्यक्ति और अधिक शक्तिशाली हो जाता है और निर्बल व्यक्ति और अधिक निर्बल हो जाता है। जिसके कारण व्यक्ति समाज में बहुत ही दीन-हीन स्थिति में दिखाई देता है। सभी के मन में ऐसी व्यवस्था से असंतुष्ट दिखाई देते हैं और अपना असंतोष अभिव्यक्त करते हुए समाज की व्यवस्था को चुनौती देते हैं–

"विषैले संतोष को पीते-पीते, अब मैं निर्जीव हो चला हूँ
लेकिन, मेरी धुकधुकी साँसो की
बौराई हुई खामोशी, पता नहीं, कब गरज उठे
जिससे तुम्हारे भीतर के, आकार पाते भेड़िए का गर्भपात हो जाए।"[9]

समाज में व्याप्त सामाजिक विसंगतियों के कारण समाज के आम आदमी की स्थिति बहुत ही दुखद है। क्योंकि-

"फूल नंगे होकर भी, सुंदर होते होंगे
पर मेरी प्रेमिका की सुंदरता तो
गिरवी है तुम्हारे पास।"[10]

वर्तमान समय में मनुष्य-मनुष्य के बीच जो मनुष्यता का भाव होता है वह खत्म होता हुआ दिखाई दे रहा है। समाज में मनुष्य विरोधी सामाजिक व्यवस्था एवं मनुष्य के अधिकारों को छीनने वाली व्यवस्था के लिए वर्तमान के राजनेताओं एवं राजनीतिक व्यवस्था से जुड़ी नई संस्कृति को कभी दोषी मानते हैं। कवि ऐसे लोगों पर करारा व्यंग करते हैं। मॉरीशस में कड़े संघर्ष करने के बाद लोगों को औपनिवेशिक संस्कृति में आजादी मिलती है लेकिन उस शोषण और यातनाएँ सहने के बाद जो स्वतंत्रता मिली उसके मायने बदल नवे हैं। लोग इस स्वतंत्रता का उपयोग अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए करने लगे हैं। स्वतंत्रता को लोग अपने-अपने मन के मुताबिक समझने लगे हैं-

"अभी कारागार के लिबास, तन से हमारे उतरे नहीं
और हमने मुक्ति को रस्सी से बांधकर
एक-एक छोर को गर्दनों में बाँध लिया
फिर हम दोनों गले से पकड़िए उस स्वतंत्रता को अपनी-अपनी ओर खींचते रहे
गुत्थम-गुत्या होता रहा, जब तक की रस्सी टूट गयी।"[11]

कवि अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के लोगों को ऐसे व्यक्तियों से सावधान करना चाहते हैं जो केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाहते हैं और चापलूसी के माध्यम से अपना स्वार्थ पूरा करते हैं। कभी ऐसे लोगों को समाज के लिए हितकारी नहीं मानते। समाज में लोगों को जागरूक करना एक कवि का कर्तव्य समझते हैं। एक कवि पर भी सामाजिक उत्थान की जिम्मेदारी होती है और सही मायनों में वहीं एक जागरूक कवि होता है जो अपने समाज के आसपास के वातावरण से लोगों को यथार्थ रूप में परिचित कराएँ। कवि लोगों के मन में परिवर्तन की लहर लाना चाहते हैं। कवि को आज के युवा वर्ग पर पूर्ण विश्वास है कि वे देश में परिवर्तन की लहर को चारों ओर खिलाएंगे एवं समाज में जो विषमताएँ, विसंगतियाँ व्याप्त हैं उन्हें जड़ से मिटाएँगे। कवि कहते हैं-

**"विस्तृत पहले छतनार के नीचे
जंगल उग आया है बरगदों के बोनसाई का
बौनों के शहर में
चूहों का हुजूम टाँगों पर खड़ा चाँद को कुतर रहा है
और आदमी के भाग्य के रेगिस्तान में
जहाँ कुत्ते ने नागफनी के ऊँचे पेड़ के नीचे
अपनी दाईं टाँग उठाती थी
बेशुमार कुकुरमुत्ते उग आये हैं वहाँ।"**[12]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिमन्यु अनत की कविताओं में सामाजिक पक्ष की प्रबलता दिखाई देती है। जीवन से जुड़ी समस्त परिस्थितियों पर कवि अपनी दृष्टि डालते हुए समाज और मनुष्य के बीच के रिश्ते को बरसाते नहीं है। कवि की कविताओं में उनकी निजी अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ भी जुड़ी हुई दिखाई देती है। कवि समाज के यथार्थ को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं और समाज की व्यवस्था पर तीखे प्रहार करते हैं। अपनी कविताओं में कभी मॉरीशस के अतीत के प्रति जहाँ एक ओर भाव दिखाई देते हैं वहीं दूसरी ओर वर्तमान के प्रति उनके मन में आक्रोश दिखाई देता है। अभिमन्यु अनंत वर्तमान के कवि हैं जिसमें अतीत की व्यथा और भविष्य की आकांक्षाएँ विद्‌यमान है।

संदर्भः

1. श्री राजेश्वर गुरु, प्रेमचंद एक अध्ययन, पृ. 276
2. वही, पृ. 83
3. अभिमन्यु अनत: समग्र कविताएँ: (नागफनी में उलझी साँसे प्रकाशकीय आवरण), डॉ. कमल किशोर गोयनका, इरावदी प्रकाशन, प्रथम 1998, पृ. 71
4. वही, पृ. 71
5. वही, पृ. 74
6. वही, पृ. 72
7. वही, पृ. 83
8. वही, पृ. 90
9. वही, पृ. 91
10. वही, पृ. 95
11. वही, पृ. 130
12. वही, पृ. 309

❑❑

प्रजातांत्रिक राष्ट्रों की समाज चेतना और जागृति : उज़्बेकिस्तान और भारत

मनीष कुमार मिश्रा

अपने समय और परिस्थितियों की विशेषता और विलक्षणता को समझना हमेशा ही भविष्य की राह आसान बनाता है। ऐसे में वे राष्ट्र जो जनतांत्रिक मूल्यों वाले समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा जो अपनी राष्ट्रीय एकता, अखंडता और संप्रभुता के प्रति दृढ़संकल्प वैश्विक अर्थव्यवस्था और प्रगति के लिए निरंतर प्रयासरत है; उनमें भारत और उज्बेकिस्तान प्रमुखता से शामिल हैं। स्थिर, सशक्त और स्थाई विकास को लेकर दोनों राष्ट्रों के हितों ने उन्हें एक–दूसरे के करीब लाया है। निर्माण, सुरक्षा स्थिरता जैसे गंभीर मुद्दों को लेकर दोनों राष्ट्रों ने अपनी साझेदारी को बल प्रदान किया है। विश्वव्यापी सुरक्षा और संतुलन को लेकर भी दोनों देश करीब आए हैं।

उज्बेकिस्तान एक राष्ट्र के रूप में अपनी आवाम की सुरक्षा, आकाँक्षा, सुख एवं शांति के लिए कटिबद्ध है। यह राष्ट्र प्राकृतिक और कच्चे संसाधनों का विशाल भंडार गृह है। यहाँ तेल और गैस का बड़ा भंडार है जो इसे पर्शियन खाड़ी, कैस्पियन सागर एवं तरीम के थाले से उपलब्ध है। इनके बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत से पूरा विश्व अवगत है। विश्व मानचित्र पर उज्बेकिस्तान की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि पूरे मध्य एशिया की राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था को यह व्यापक रूप से प्रभावित करने की क्षमता रखता है। आजादी के बाद से ही उज्बेकिस्तान में सामाजिक समरसता, समन्वय और शांति पर विशेष ध्यान रखा गया है। भारत जैसे राष्ट्र जो 21वीं शती को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, उनके लिए उज्बेकिस्तान जैसे राष्ट्रों के साथ मिलकर अंतरराष्ट्रीय सहअस्तित्व, सामूहिक विकास, सुरक्षा प्रणाली का समायोजन एवं न्यू वर्ड पावर ऑर्डर में नए आयाम बनाने की अपार संभावनाएँ हैं। मध्य एशिया में उग्रवाद, आतंकवाद, मादक पदार्थों की तस्करी, गैर कानूनी हथियारों का व्यापार और मानवाधिकार से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों पर उज्बेकिस्तान जैसे राष्ट्रों के साथ मिलकर भारत सकारात्मक एवं रचनात्मक कार्य

कर सकता है। पर्यावरण, भाषा, संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में पब्लिक डिप्लोमेसी के माध्यम से एक-दूसरे से परिचित होते हुए आपसदारी को व्यापक रूप से बढ़ाया जाना चाहिए।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी शाख़ मजबूत करने के लिए क्षेत्रीय संघर्ष की स्थितियों को लगातार कमजोर करते हुए, उन्हें खत्म करने की राह पर दोनों राष्ट्रों को अग्रसर होते रहना होगा। विकास, व्यापार और आर्थिक मजबूती के साथ-साथ शिक्षा के माध्यम से हम इस संदर्भ में बड़ी सफलता हासिल कर सकते हैं। सांप्रदायिकता और धार्मिक उन्माद को कमजोर करते हुए समाज को अधिक से अधिक समन्वयवादी एवं सहिष्णुता बनाने के लिए ठोस और बुनियादी योजनाओं की जरूरत है। भारत इस संदर्भ में इधर कुछ सालों से कई महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी दिशा में उठाया गया महत्वपूर्ण कदम है। उज्बेकिस्तान भी सामाजिक समरसता, उदारता और सहिष्णुता के लिए प्रखरता से कम कर रहा है। क्षेत्रीय संघर्ष, राष्ट्रीय प्रगति के मार्ग में प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

अतः इन्हें समय रहते योजना बद्ध तरीके से खत्म करना नितांत आवश्यक है। विकास सबका हो लेकिन तुष्टीकरण किसी का भी नहीं। तुष्टीकरण की राजनीति ने भारत जैसे राष्ट्र का बड़ा नुकसान किया है। लेकिन अब बदलाव हो रहा है। कश्मीर से धारा 370 का खात्मा यह बताता है कि भारत एक नए राष्ट्र के रूप में विवेकपूर्ण निर्णय के साथ आगे बढ़ रहा है। धार्मिक मामले किसी भी राष्ट्र के लिए बड़े संवेदनशील होते हैं। अतः यहाँ सजगता एवं सतर्कता दोनों ही बहुत महत्वपूर्ण है। उग्र वृत्तियों का आविर्भाव हमेशा से ही सामाजिक समरसता के ताने-बाने के लिए बड़ी चुनौती रही है। किसी भी राष्ट्र की सार्वभौमिकता के लिए यह एक गंभीर खतरे की तरह होता है। भारत विभाजन की विभीषिका इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। धार्मिक नैतिकता हमेशा विश्वव्यापी मानवीय आदर्शों एवं उदात्त जीवन मूल्यों से जोड़ने का काम करती है। लेकिन व्यक्तिगत आकांक्षाओं को धर्म का नाम देकर धार्मिक उन्माद फैलाने वालों का इतिहास भी बहुत पुराना है। किसी भी धर्म के प्रति असहिष्णुता उचित नहीं है। भारत और उज्बेकिस्तान की वर्तमान सरकारें इस बात को अच्छी तरह समझती हैं। "सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास" जैसे नारे यह बताते हैं कि एक राष्ट्र के रूप में हम कितने प्रखर और प्रांजल विचारों के साथ आगे बढ़ रहे हैं। उज्बेकिस्तान में भी शुरू से ही इसके प्रयास किए गए हैं। पूर्व राष्ट्रपति इस्लाम करीम (1938-2016) सामाजिक सहअस्तित्व और सहिष्णुता के बड़े समर्थक रहे हैं। वर्तमान में उज्बेकिस्तान के राष्ट्रपति शौकत मिर्जियोयेव ने भी इस दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। देश की कानूनी प्रक्रिया और शिक्षा में सुधार करने, मानवाधिकारों और हितों की रक्षा के लिए जरुरी कदम, न्यायपालिका को स्वतंत्र रखने के लिए कानून में संशोधन, न्यायिक प्रणाली में भ्रष्टाचार को रोकने हेतु 1 फरवरी, 2021 से न्यायिक पदों के लिए उम्मीदवारों के

चयन की परीक्षा प्रक्रिया को ऑनलाइन करने और भ्रष्टाचार से निपटने के लिए एक स्वतंत्र राज्य निकाय बनाने जैसे कई कदम उज्बेकिस्तान सरकार उठा चुकी है।

निष्क्रियता और गतिहीनता से कोई भी राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो पाएगा। जो जहाँ है, जिस क्षेत्र में है, उसे आजादी के अमृत काल में देश को एक विकसित राष्ट्र बनाने के लिए कटिबंध होना होगा। जाति, भाषा, धर्म और संप्रदाय के भेद को भुलाकर भारतवासियों को एक साथ एक लक्ष्य के लिए आगे बढ़ना होगा। उज्बेकिस्तान गणतंत्र में भी इस्लाम के अलावा लगभग 15 अन्य धार्मिक समुदायों के लोग रहते हैं। उनकी धार्मिक प्रवृत्तियाँ, आचरण, आस्था और परंपराओं का यह गणतंत्र सम्मान करते हुए उन्हें समानता के अधिकार के लिए आश्वस्त करता है। कोई भी धर्म यदि राष्ट्रीय हितों के विपरीत आचरण करता है तो उसे अस्वीकार करते हुए तुरंत रोका जाता है। इस तरह भारत और उज्बेकिस्तान का सामाजिक ढाँचा काफी हद तक एक-दूसरे से मेल खाता है। ऐसे में इन दो राष्ट्रों का मिलकर काम करना पूरी दुनियाँ के लिए शांति और प्रगति के नए आयाम बना सकता है। भारत और उज्बेकिस्तान के बीच सन् 1993 में व्यापारिक और आर्थिक सहयोग पर समझौता हुआ, जिसके अंतर्गत (MFN) Most Favored Nation Treatment को मानते हुए आर्थिक, वैज्ञानिक, और व्यापारिक सहयोग को बढ़ावा देने पर विमर्श हुआ। Avoidance of Double Taxation पर सन् 1993 में और द्विपक्षीय निवेश संवर्धन पर सन् 1999 में समझौता हुआ। सन् 2006 में Memorandum of Co-operation, सन् 2011 में "Long Term Strategic Partnership" पर समझौता, सन् 2006 में Jawaharlal Nehru India Uzbekistan Centre for Information Technology (JNUUICIT) की ताशकंद में स्थापना, सन् 2015 में उज़्बेक विदेश मंत्रालय के साथ मिलकर रोजगार केंद्र की स्थापना और Bilateral Investment Promotion Protection Agreement (BIPA) समझौता जैसे कई महत्वपूर्ण कदम दोनों राष्ट्र मिलकर उठा रहे हैं।

यह समय अंतरराष्ट्रीय शक्ति आधिपत्य की प्रवृत्ति के लिए दुर्भाग्यपूर्ण साबित हो रहा है। अपने अनुभव एवं विवेक के साथ जो राष्ट्र राजनीतिक आदर्शवाद, विश्व बंधुत्व और आर्थिक नायकत्व के लिए आगे बढ़ रहे हैं, वे अधिक सफल होते हुए दिखाई पड़ रहे हैं। अर्थव्यवस्था का पोषण देश और समाज के कल्याण के लिए होना चाहिए। अपने आप को अधिक सुरक्षित बनाने के लिए होना चाहिए ना कि किसी कमजोर राष्ट्र पर आधिपत्य जमाने के लिए। तात्कालिक एवं दीर्घकालिक हितों की चिंता सभी राष्ट्रों का अधिकार है। हमें इसका सम्मान करना चाहिए। प्रभुत्ववाद की मानसिकता ने दुनिया का पहले ही बड़ा नुकसान किया है, अब हमें इसके चंगुल में नहीं फंसना चाहिए। हमें आपसी सूझबूझ और साझा हितों के परिप्रेक्ष्य में काम करते हुए अपनी स्वतंत्रता और सार्वभौमिकता को अधिक

शक्तिशाली बनाने के लिए लगातार कार्य करते रहना होगा। बंधुत्व, सहयोग और सांस्कृतिक आदान-प्रदान से यह राह आसान हो सकेगी।

अनेकता में एकता भारत और उज्बेकिस्तान दोनों ही राष्ट्रों की पहचान है। यह विविधता अतीत से गहरे रूप में जुड़ी है तथा यह निरंतर विस्तृत होती 'आत्मभाव' का ही परिणाम है, जहाँ सारे भेद मिटने लगते हैं। इस 'अभेद' ने ही दोनों राष्ट्रों में प्रजातांत्रिक मूल्यों को लगातार मजबूती प्रदान की है। ऐसे में विविधता और मौलिकता का सम्मान एक तरह से राष्ट्र की आत्मा बन गई जो संविधान के रूप में देखी, समझी और मानी जाती है। समाज में व्याप्त दया, करुणा, संवेदनशीलता, सहिष्णुता और मानवीयता को हर संकीर्णता से ऊपर उठते हुए, अपने राष्ट्र की एकता, अखंडता और संप्रभुता के लिए ढाल की तरह काम करना होगा। इसके लिए सकारात्मक और संतुलित नीतियों का निर्माण हर दूरदर्शी राष्ट्र नायक का कर्तव्य है। भारत और उज्बेकिस्तान का वर्तमान शीर्ष नेतृत्व सकारात्मक ऊर्जा और विश्वास से भरा हुआ है।

प्रगतिशील राष्ट्रों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती भ्रष्टाचार और आपराधिक गतिविधियाँ भी हैं। यह 'सम' स्थितियों को विषम परिस्थिति में बदलकर, निर्धारित लक्ष्य को हासिल करना कठिन एवं जटिल बना देती हैं। सामाजिक, आर्थिक और वित्तीय अपराधों से अर्थव्यवस्था पर ही नहीं अपितु समाज की नैतिक एवं व्यवहारिक शक्ति पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। संगठित अपराधों की पूरी श्रृंखला किसी भी देश के लिए ग्रहण की तरह है। इन पर कड़ाई से प्रहार नहीं किया गया तो राष्ट्र का भविष्य दिशाहीन हो जाएगा। ऐसी समस्याएँ कमोबेश सभी राष्ट्रों में होती हैं। भारत और उज्बेकिस्तान भी इसके लिए कोई अपवाद नहीं हैं। लेकिन राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि रखते हुए दोनों ही देश की सरकारें कुशल प्रशासन और पारदर्शी व्यवस्था के साथ इस समस्या पर विजय प्राप्त कर रही हैं।

भारत ने सूचना प्रौद्योगिकी और नई संचार तकनीक का उपयोग करते हुए भ्रष्टाचार और आर्थिक अपराध की जड़ों पर करारा प्रहार किया है। भारत में 'जनधन योजना' के तहत करोड़ों नागरिकों के बैंक खाते खोलना, डायरेक्ट मनी ट्रांसफर से करोड़ों किसानों व मजदूरों को पैसे सीधे उनके खाते में देना, जी.एस.टी. की प्रणाली, नोटबंदी एवं ऑनलाइन बैंकिंग ट्रांजैक्शन को बढ़ावा देने संबंधी योजनाओं के माध्यम से बहुत बड़ी क्रांति देश में खड़ी की। इससे सत्ता और शासन में आम जनमानस का विश्वास बढ़ा। सरकार में स्थिरता आयी और देश दुनियाँ की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की राह पर अग्रसर हुआ। इसी तरह उज्बेकिस्तान में भी भ्रष्ट अधिकारियों को कठोर दंड देना, उद्योगों को बढ़ावा देना, प्रशासनिक कार्य पद्धतियों का आधुनिकीकरण, तकनीक का कुशल उपयोग तथा अपने नागरिकों में उच्च स्तरीय नैतिकता को प्रोत्साहित करने जैसे निर्णयों के माध्यम से अपराध और भ्रष्टाचार को कुचलने में व्यापक रूप से सफल रही है।

दोनों राष्ट्रो के साहित्यिक मूल्यों में आपसदारी की बात करें तो उज्बेकिस्तान में सन् 1925 के आसपास रविंद्रनाथ टैगोर की कहानियों एवं कविताओं का उज्बेकी एवं रूसी भाषा में अनुवाद के माध्यम से परिचय हुआ। सन् 1940 से 1960 के बीच प्रेमचंद, मोहम्मद इकबाल, मिर्जा गालिब, अमृता प्रीतम और यशपाल की रचनाएँ यहाँ की भाषा में अनुवाद करके प्रकाशित की गयीं। इस तरह अनुवाद के माध्यम से भारतीय साहित्यकारों के साहित्य से उज्बेकिस्तान के लोग परिचित होते रहे। अब तक अनुमानतः 30 से 35 भारतीय साहित्यकारों का साहित्य उज्बेकी भाषा में अनुवाद के माध्यम से पहुँच चुका है। अमृता प्रीतम ने कई बार उज्बेकिस्तान की यात्रा की। उनके काव्य संग्रह 'काला गुलाब' में 'मेरे ताशकंद वाले दोस्त को' नाम की कविता भी है। अमृता प्रीतम ने अपनी उज्बेकिस्तान की यात्राओं से संबंधित कुछ निबंध भी लिखे जो सन् 1962 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'अतीत की परछाइयाँ में संकलित हैं। 'आँसुओं का रिश्ता', 'खाबिदा हुसीना', 'उज्बेकिस्तान की जुल्फ' उनके ऐसे ही निबंध हैं। उज्बेकी भाषा की कवयित्री जुल्फिया से अपनी दोस्ती का भी उन्होंने जिक्र किया है। सन् 1978 में भारत के 30 लेखकों की कहानियों को उज्बेकी में अनुवाद करके पुस्तक के रूप में ताशकंद से प्रकाशित किया गया। इन लेखकों में प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, इस्मत चुगताई, अमृता प्रीतम, केशव देव और मलयालम की सरस्वती अम्मा शामिल हैं। इसी तरह सन् 2006 में 'दिया जला सारी रात' पुस्तक का प्रकाशन भी हो चुका हुआ है।

भारत के संदर्भ में साहित्य रचने वाले उज्बेकी साहित्यकारों में गफूर गुलाम, हमीद गुलाम, अस्काद मुहतार, हमीद अलीमजान, मिरतेमीर, सईदा जुनुनोवा, एरकीन वहीदोवा और तमारा खोदजाएवा का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उज्बेक कवि उईगुन ने भारत को केंद्र में रखकर 'बुलबुल' और 'हिमालय के ऊपर' नामक कविता लिखी है। अली सरदार जाफरी, सुभद्रा कुमारी चौहान, अमृतलाल नागर, पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, केदारनाथ सिंह, मुक्तिबोध, अशोक बाजपेई और यशपाल के साहित्य पर शोध पर पुस्तकों का लेखन कार्य भी उज्बेकी साहित्यकारों व विद्वानों द्वारा किया गया है। डॉ. बेकाएवा ने यशपाल के उपन्यासों पर शोध पर कार्य किया है। उज्बेकी कवि कोदरी की कविता 'भारतीय कवयित्रीयों को' एवं बाबा जान की 'भारत की माँ' कविता भारत के प्रति उनके प्रेम को दर्शाती है।

'उज्बेकिस्तान और भारत के साहित्यिक संबंध' एक पाठ्यक्रम के रूप में यहाँ ताशकंद में पढ़ाया जाता है। समग्र रूप से हम यह कह सकते हैं कि भारत और उज्बेकिस्तान विश्व के दो महान गणतंत्र हैं। 21वीं शती के विश्वव्यापी मानवीय मूल्यों, शांति, स्थिरता,

प्रगति और स्वतंत्रता के स्वप्न को साकार करने में इन दोनों राष्ट्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। समानता, समन्वय, संतुलन, संवर्धन और विकास का वैश्विक महामार्ग इन राष्ट्रों के प्रयासों से ही साकार होगा। प्रजातांत्रिक राष्ट्रों की समाज चेतना और जागृति पूरे विश्व को आलोकित करेगी, इसमें किसी को कोई आशंका नहीं होनी चाहिए।

संदर्भः

1. भारत और उज़्बेकिस्तान द्विपक्षीय संबंधः एक नई पहल चित्रा राजोरा https://www.icwa.in/showcontent.php?lang=1&level&3&lsid=1570&lid=1514
2. उज़्बेकिस्तान में हुए न्यायिक और कानूनी सुधारः 2020 में उठाये गए 10 महत्वपूर्ण कदम– एल्डोर तुलियाकोव एवं निलुफ़र नोडिरखोनोवा https://www.icwa.in/showcontent.php?lang=2&level=1&lsid=6037&lid=4152
3. htps://www.bbc.com/hindi/international-45538621
4. भारत और उज़्बेकिस्तान के साहित्यिक संबंध – असा, प्रोफ़ेसर तमारा खोदजाएवा, ब्राउन बुक्स पलिकंशन प्रा.लि., अलीगढ़, भारत। प्रथम संस्करण 2021
5. उज़्बेकिस्तान में इक्कीसवीं सदी का नवोदय –इस्लाम करीमोव, यू.बी.एस. पब्लिशर डिस्ट्रीबूटर्स लिमिटेड, नई दिल्ली, भारत। प्रथम संस्करण 1999
6. Central Asia-India Dialogue: Building a partnership on the foundation of rich cultural and Historical Heritage - edited by Jyotsna Bakshi, published by Lal Bahadur Shastri center for indian Culture, Tashkent & Mahatma Gandhi Indological center, Tashkent state institute of oriental studies, first edition 2018
7. https://www.mea.gov.in/press-releases-hi.htm?dt/36982/16th+round+of+Foreign+Office+Consultations+FOC+between+India+and+Uzbekistan
8. Language conflict and National Development: Group politics and National language policy in India- Jyotirindra Das Gupta, Bombay: Oxford university press, University of California press, edition 1970
9. Census of India, Paper no.1 of 1954, Delhi Publication.

10. Language conflict research: a state of the art - Jeroen Darquennes, IJSL 2015; 235: 7-32

11. Mir Ali Shir Navai the Great by Shuhrat Sirujiddinov, Gafur Gulom Nomidagi nashriyat. Matbaqijodiyuyi, 2018, Toshkent.

12. अली शेर नवाई: उज़्बेकिस्तान के अजीम शायर के कलाम का उर्दू तर्जुमा – रहमान वर्दी और मोहम्मद जान, ताश मिर्ज़ा अकादमी, पाकिस्तान द्वारा सन् 1996 में प्रकाशित

13. CONCEPTION OF POLITICAL POWER AND THE TIMURID CULTURAL ACHIEVEMENTS DURING THE REIGN OF SULTAN HUSAYN BAYQARA: A THESIS SUBMITTED TO THE GRADUATE SCHOOL OF SOCIAL SCIENCES OF MIDDLE EAST TECHNICAL UNIVERSITYBY ÖZDEN ERDOGAN, MAY 2023.

14. https://www.cambridge.org/core/journals/iranian-studies/article/abs/centralizing-reform-and-its-opponents-in-the-late-timurid-period

❑❑

लेखकों के नाम और पते

1.	**प्रोमिला**	:	एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी और विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद, भारत-500007 मो.: 918977961191 ई-मेल: promila.du@gmail.com
2.	**पूनम सिंह**	:	असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कालीपद घोष तराई महाविद्यालय, बागडोगरा, दार्जिलिंग-734014 (प. ब.) मो.: 8637325810 ई-मेल: poonamsingh2945@gmail.com
3.	**सरोजिनी नौटियाल**	:	176, आराघर, देहरादून-248001 मो.: 9410983596 ई-मेल: snautiyal1@gmail.com
4.	**योगेन्द्र सिंह**	:	हिंदी विभाग चौ. चरण सिंह, विश्वविद्यालय, मेरठ-250004, मो.: 9837127252 ई-मेल: yogendrasin77@gmail.com
5.	**मनोज कुमार**	:	सहायक प्राध्यापक : एम.डी. शाह महिला महाविद्यालय, मुंबई (महाराष्ट्र)-400064, मो.: 9769068306 ई-मेल: smanoj475@gmail.com
6.	**योग्यता भार्गव**	:	विभागाध्यक्ष एवं सहायक प्राध्यापक, हिंदी शा. नेहरू स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, अशोक नगर (म.प्र.)-473331 मो.: 7999597028, 942546201 ई-मेल: yogyatabhargava@gmail.com
7.	**मुन्नालाल गुप्ता**	:	सहायक प्रोफेसर, प्रवासन एवं डायस्पोरा अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)-442001, मो. 9028226561 ई-मेल: mlgbharat@gmail.com
8.	**ॠतु शर्मा नंनन पांडे**	:	भारत की बेटी, सूरीनाम की बहु व नीदरलैंड की स्वतंत्र पत्रकार व लेखिका परामर्श समिति की सदस्या आसन, नीदरलैंड, मो. 031-0622252509 ई-मेल: ritu0902@icloud.com

9. **विजया सती**	:	पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, पूर्व विज़िटिंग प्रोफेसर, एलते विश्वविद्यालय, बुदापैश्त, हंगरी, पूर्व प्रोफेसर, हांकुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज सिओल, दक्षिण कोरिया, 'अभिराम' 22, हीरा नगर, हल्द्वानी, नैनीताल-263139 मो. 8587093235 ई-मेल: vijayasatijuly1@gmail.com
10. **तस्मीना हुसैन**	:	असिस्टेंट प्रोफेसर, अध्यापक शिक्षा विभाग केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा-282005, मो. 9557609076 ई-मेल: tasminahussain786@gmail.com
11. **श्वेता गुप्ता**	:	सहायक प्राध्यापक, इतिहास, राजेन्द्र महाविद्यालय, छपरा, बिहार-841301, मो. 6393477329 ई-मेल: sweta26gup@gmail.com
12. **संदीप कुमार मिश्र**	:	ग्राम-कुतबीचक, पोस्ट-पट्टीनरेंद्रपुर, जौनपुर, उत्तर प्रदेश-223102, मो. 9918869891 ई-मेल: sandeepking625@gmail.com
13. **आशा मीणा**	:	हिंदी विभाग, सहायक आचार्य, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार-845401 मो. 9013689766 ई-मेल: aashu1718@gmail.com
14. **मनीष कुमार मिश्रा**	:	विजिटिंग प्रोफेसर, (ICCR Chair), ताशकंद स्टेट युनिवर्सिटी ऑफ ओरिएंटल स्टडीज़, ताशकंद, उज़्बेकिस्तान मो. 8090100900 ई-मेल: manishmuntazir@gmail.com

रचनाकारों से निवेदन

प्रवासी जगत में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप केवल प्रवासी साहित्य, भाषा, समाज, संस्कृति एवं प्रवासी साहित्यकारों से संबंधित रचनाएँ आमंत्रित हैं। कृपया सभी लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी, यूनिकोड में टाइप कर pravasijagat.khsagra17@gmail.com पर भेजने का कष्ट करें। दूसरे अन्य फॉण्ट से लेख भेजने पर उसके साथ फॉण्ट भी भेजें। अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी।

'प्रवासी जगत' सदस्यता फॉर्म

नाम ....

डाक का पता ....

....

....

सदस्यता शुल्क : व्यक्तिगत – प्रति अंक ₹ 40 / –, वार्षिक – ₹ 150 / –
संस्थागत – वार्षिक शुल्क ₹ 250 / –
(डाक व्यय प्रति अंक ₹ 35 / – तथा वार्षिक ₹ 100 / – अतिरिक्त होगा)
विदेशों में प्रति अंक $ 10, वार्षिक $ 40

डी.डी./मनीऑर्डर का विवरण ....

दूरभाष .... ई–मेल ....

निर्धारित सदस्यता शुल्क का डी.डी./मनीऑर्डर सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा के नाम से देय है। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें–प्रकाशन विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा–282005 (उत्तर प्रदेश), भारत

मोबाइल नं. : 8979339655

ई–मेल : pravasijagat.khsagra17@gmail.com

आलेख की मौलिकता / कॉपीराइट हस्तांतरण संबंधी घोषणा प्रपत्र

Declaration regarding originality of work and Copyright transfer

सेवा में/ To,

संपादक / The Editor,

पत्रिका का नाम/ Name of the Journal:

आई एस एस एन/ ISSN:

पता/ Address:

महोदय/ महोदया/ Sir/Madam,

मैं/ हम यह संपुष्टि करते हैं कि/ I (We) confirm that:-

....

....

शीर्षक से मेरा / हमारा यह आलेख इससे पूर्व न तो पूर्ण अथवा आंशिक रूप में कहीं भी प्रकाशित हुआ है और न यह वर्तमान में कहीं अन्यत्र प्रकाशन के लिए विचाराधीन है।

My/ our paper entitled " ....

....

....

....

has not previously been published in whole or in part, is not currently being considered elsewhere for publication.

उपर्युक्त आलेख संस्थान की .... पत्रिका में प्रकाशन के लिए स्वीकृत होने की स्थिति में अन्यत्र अथवा किसी अन्य भाषा में, संपादक/ प्रकाशक की सहमति के बिना प्रकाशित नहीं कराया जाएगा।

If it is accepted for publication in the above Journal, it will not be publised elsewhere in any language, without the consent of the editor and the publisher.

मैं / हम यह भी आश्वस्त करते हैं कि उपर्युक्त आलेख मेरा / हमारा मौलिक कार्य है और इसमें किसी भी प्रकार की साहित्यिक चोरी नहीं की गई है।

I (we) also assure that This paper is my/our original work and there is no plagiarized material in above titled paper.

मैं / हम उपर्युक्त आलेख को .... पत्रिका, आई एस एस एन .... में प्रकाशन के लिए स्वीकार किए जाने की स्थिति में इसके शीर्षक और/ अथवा विषय वस्तु में आवश्यकतानुसार संपादन (काट-छाँट अथवा संशोधन) करने का अधिकार पत्रिका के संपादक / प्रकाशक को देता हूँ/ देते हैं।

I/we also grant permission to the editor/ publisher of the journal for making necessary changes (addition, deletion, modification) in the title and content of the paper, if required while being considered for publication.

मैं / हम यह स्वीकार करते हैं कि उपर्युक्त विवरण के अनुसार आलेख पत्रिका में प्रकाशनार्थ स्वीकृत किये जाने की स्थिति में इसके कॉपीराइट संबंधी समस्त अधिकार प्रकाशक (संस्थान) को स्वतः प्राप्त हो जायेंगे।

I/we acknowledge that in condition of acceptance for publication, the publisher (Institute) acquires automatically the copyright of the manuscript in all ways.

भवदीय / भवदीया

(A) First Author / Corresponding Author Name:		Signature
Name of the Organization:		Pin Code
City:	State:	Country:
E-mail:	Mob.	Whatsapp no.
Residential Address:		
(B) Second Author / Corresponding Author Name:		Signature
Name of the Organization:		Pin Code
City:	State:	Country:
E-mail:	Mob.	Whatsapp no.
Residential Address:		
(C) Third Author / Corresponding Author Name:		Signature
Name of the Organization:		Pin Code
City:	State:	Country:
E-mail:	Mob.	Whatsapp no.
Residential Address:		

एकल लेखक होने पर (B) और (C) में "N.A." लिखें

In case of sole author, please mention "N.A." in (B) & (C)

केंद्रीय हिंदी संस्थान से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाएँ

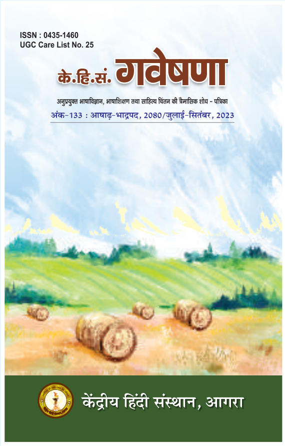

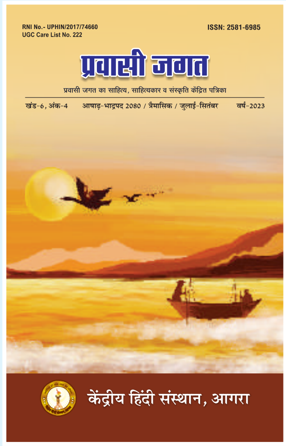

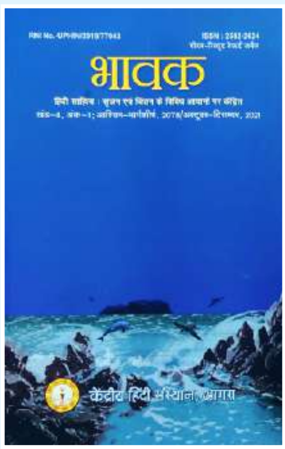

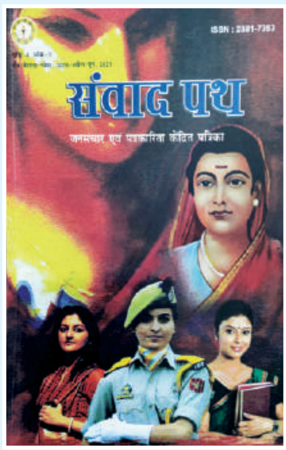

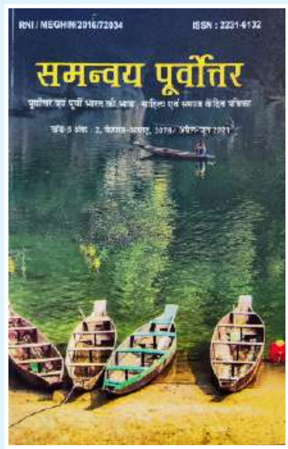

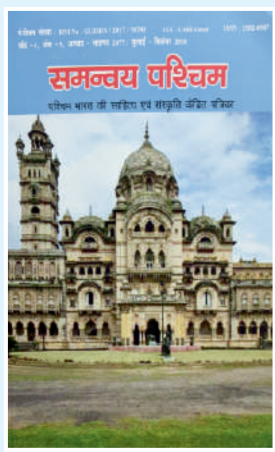

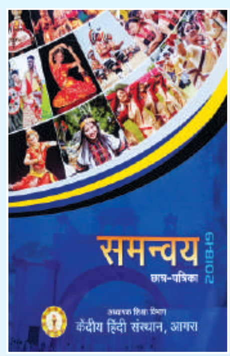

संस्थान से प्रकाशित नवीनतम शब्द कोश

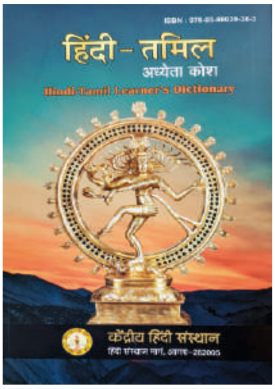

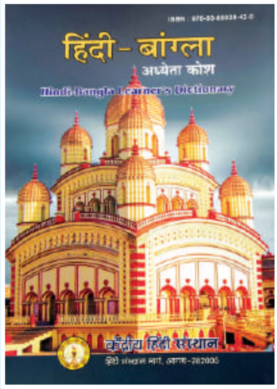

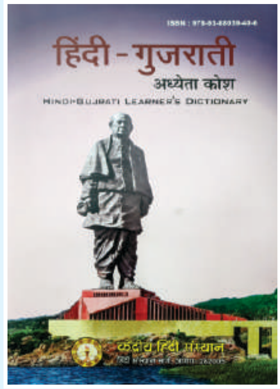

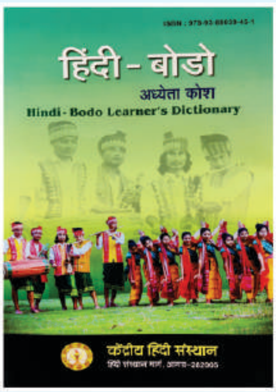

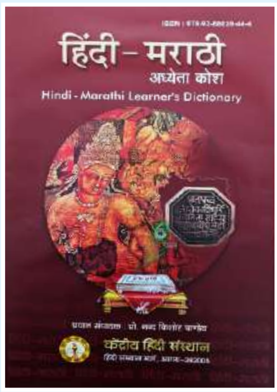

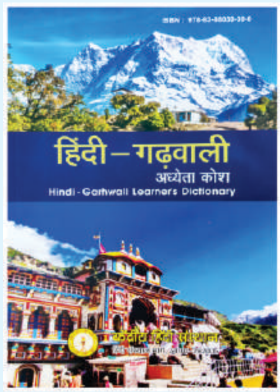

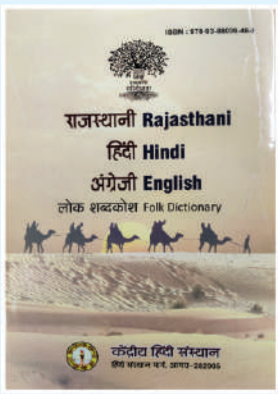

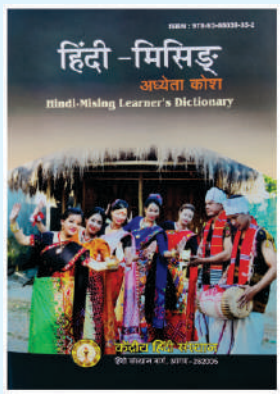

मुद्रक राष्ट्रभाषा ऑफसेट प्रेस, आगरा तथा प्रकाशक प्रो. बीना शर्मा, विभागाध्यक्ष, अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा के पक्ष में 26/470, बल्का बस्ती, राजा की मंडी, आगरा (मुद्रण स्थल) से मुद्रित तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005 (उ.प्र.) (प्रकाशन स्थल) से प्रकाशित, संपादक प्रो. बीना शर्मा